श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

गौडीय सम्प्रदायाचार्य श्रील श्रीवलदेवविद्याभूषण विरचित

श्रीवेदान्तस्यामन्तकः

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज

व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676

श्रीश्रीगौरगदाधरौ जयतः ।

वेदान्तस्यमन्तकः

विप्रकुलतिलक श्रीराधादामोदरकृतः

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन
न्याय-वैशेषिकशास्त्रिन्यायाचार्यकाव्यव्याकरणसांख्य
मीमांसावेदान्ततर्कतर्कतर्कवैष्णवदर्शनतीर्थ
विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितः ।

सद्ग्रन्थप्रकाशक—
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास,
कालीदह, वृन्दावन, जिला—मथुरा । उत्तर प्रदेश

प्रकाशक :- * मुद्रक :-
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, पुराना कालीदह, पो० वृन्दावन।
जिला–मथुरा (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशनतिथि :–
गोपाष्टमी
संवत् २०६५

※※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※※

❀ विज्ञप्तिः ❀

——❀※※——

श्रीश्रीगौरसुन्दर की करुणा से "वेदान्तस्यमन्तक" नामक ग्रन्थरत्न प्रकाशित हुआ। यह वेदान्त प्रकरण ग्रन्थ है, इसकी सहायता से वेदान्त ग्रन्थ में वर्णित विषयों का परिज्ञान होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रचयिता श्रीराधादामोदर विप्र हैं, आप श्रीबलदेव विद्याभूषण महोदय के गुरु थे, आपका रचित अपर ग्रन्थ "छन्दः कौस्तुभ है। जिस के भाष्य रचन के आरम्भ में विद्याभूषण पाद ने **"अर्चित नयनानन्दो राधादामोदरोगुरुर्जीयात्। विवृणोमि यस्य कृपया छन्दः कौस्तुभमहंमितवाक्"** नामतः उल्लेख किया है।

प्रकाशित पुस्तकों में कहीं पर "श्रीबलदेवविरचितः" "वेदान्तस्यमन्तकः" उल्लेख मिलता है, किन्तु वह असमीचीन प्रतिभात होता है।

प्रथमतः रचयिता,–स्वयं ही ग्रन्थान्त में स्वीय **नामोल्लेख किये हैं, द्वितीयतः** सिद्धान्तरत्न नामक ग्रन्थ श्रीबलदेव विद्याभूषण कृत है, उक्त ग्रन्थ वेदान्तस्यमन्तक का ही परिवर्द्धित रूप है, लेखन शैली में भी **उभय का पार्थक्य सुस्पष्ट है।**

यह ग्रन्थ मणिवत् क्षुद्राकृति के होने से भी स्वगुण गरिमा से हृदयग्राही है। वेदान्तरहस्य जिज्ञासु के उपकारार्थ इस ग्रन्थ का विरचन हुआ है।

यह **अति सत्य कथन है कि**–वेदान्तस्यमन्तक ग्रन्थ, स्यमन्तक मणि के समान वेदान्त सिद्धान्त ग्रन्थरत्नराजि के मध्य में विराजित होकर गौड़ीय वैष्णव दर्शन का गौरव वर्द्धक है।

इस में **षष्ठ किरण** (अध्याय) है।

प्रथम किरण में—प्रमाण के विना प्रमेय सिद्धि नहीं होती

है, तज्जन्य प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान, शब्द, अर्थापत्ति अनुपलब्धि, सम्भव, ऐतिह्य, आठ प्रकार प्रमाणों का उल्लेख हुआ है, उस में से प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द प्रमाण को अङ्गीकार कर अन्यान्य प्रमाणवत् प्रत्यक्ष, अनुमान की क्वचित् व्यभिचारिता सन्दर्शन से शब्द प्रमाण का ही तत्त्व निर्णायकत्व निरूपित हुआ है।

द्वितीयकिरण में—(सर्वेश्वरतत्त्व) ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म भेद से प्रमेय पञ्चविध है। प्रथमतः ईश्वर तत्त्व निरूपण, श्रीहरि का परतमत्व, विरुद्धमत निरसन, शक्ति तत्त्व विचार, ब्रह्मके धर्मगुण समूह,—भेदवत् प्रतीत होने से भी वे सब परमसत्य हैं, अभेद में भेद की प्रतीति होती है, यह ही 'विशेष' पदार्थ है।

निर्विशेषवाद-निरसन, पुरुषोत्तम श्रीहरिका चतुर्भुजत्वादि, लक्ष्मीतत्त्व विचार, श्रीराधाका स्वयं लक्ष्मीत्व स्थापन है।

तृतीयकिरण में—(जीवतत्त्व) जीव-अणु चैतन्य नित्यज्ञान विशिष्ट अस्मदर्थ, देहादि विलक्षण, षड्भाव विकार शून्य, भगवद्-दास, श्रीगुरुचरणाश्रय एवं भागवत धर्म की शिक्षा निष्कपट भाव से करने पर श्रीहरि भक्तिलाभ, श्रीगुरुचरणों से होता है। अनन्तर जीव कृतार्थ होता है।

शास्त्रज्ञान पूर्वक ही भक्ति अनुष्ठेय है। ईश्वर एवं जीव में भेद नित्यसिद्ध है। इसका विस्तृत विचार है।

चतुर्थकिरण में—(प्रकृतितत्त्व) सत्त्वादिगुणत्रयमयी नित्या प्रकृति, गुणत्रय की समता से प्रलय, एवं वैषम्य से सृष्टि होती है। प्रकृति का प्रथम परिणाम,—महत्तत्त्व है। (सात्त्विक, राजसिक, तामसिक) है। तत् पश्चात् अहङ्कार तत्त्व, वह भी सात्त्विकादि भेद से त्रिविध है, सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रिय के अधिष्ठातृ देवतागण एवं मन को उत्पत्ति होती है। राजस अहङ्कार से दश बाह्येन्द्रिय एवं तामस से तन्मात्रा के द्वारा आकाशादि पञ्चमहाभूत की सृष्टि होती है।

ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय, प्रत्येक ही पाँच पाँच प्रकार हैं, इस के विभिन्न देवता एवं कर्म होते हैं।

पञ्चीकरण—पञ्चीकृत भूत समूह से चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड समूह उत्पन्न होते हैं। मतान्तर में—चतुर्विशति-तत्त्व का निरूपण है।

पञ्चम किरण में—(कालतत्त्व) काल—गुणत्रय शून्य जड़ द्रव्य विशेष है। भूत भविष्यदादि व्यवहार एवं सृष्टि प्रलय का कारण **काल**—सदा परिवर्त्तमान है। **काल**—विभु एवं नित्य होने से भी भगवद्धाम में काल का प्रभाव नहीं है।

षष्ठ किरण में—(कर्म निरूपण) **कर्म**—अनादि सिद्ध है, यह शुभ अशुभ भेद से द्विविध है, काम्य, नित्य, नैमित्तिक भेद से भी त्रिविध कर्म है।

सद्गुरु के समीप से शास्त्राध्ययन होने पर विमल ज्ञानोत्पन्न होता है, उस से सञ्चित एवं प्रारब्ध कर्म का विनाश एवं विश्लेष होता है, उक्त ज्ञान **परोक्ष एवं अपरोक्ष** भेद से द्विविध है, शास्त्रज्ञान ही परोक्ष है, एवं भक्ति ही अपरोक्ष ज्ञान है।

ईश्वरादि तत्त्व पञ्चात्मक-विवेकी व्यक्ति.—भक्त्यधिकारी है, भक्ति,—अभिधेय है, एवं श्रीहरिपादपद्मलाभ ही प्रयोजन है।

हरिदासशास्त्री

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

सूची पत्रम्

❀ पद्यानां संग्रहः ❀

द्वितीय: प्रमेय:

तृतीय: किरण:

❀ वेदान्तस्यमन्तके–श्रुतीनां संग्रहः ❀

❀ ब्रह्मसूत्राणि ❀

मातृकावर्णक्रमेण सूची

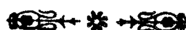
---***---

द्रष्टव्य :—उद्धृत ग्रन्थावलियों का विवरण निम्नलिखित संस्करण से गृहीत हुआ है।

VEDANTA SYAMANTAKA
(of RADHADAMODARA)

Being a treatise on Bengal Vaisnava Philosophy edited with introduction, notes and appendices by Umesh Chandra Bhattacharjee, M.A.B.L, lecturer in Philosophy, University of Dacca, (Bengal). Published by—Moti Lal Banarsi Dass, proprietors of The Punjab Sanskrit Book Depot Lahore.

(1930)



** श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् **

—०ꢴ***ꢴ०—

❀ वेदान्तस्यमन्तकः ❀

* श्रीमद् राधादामोदरविप्रविरचितः ॥ *

——०***०——

सनातनं रूपमिहोपदर्शय-
आनन्दसिन्धुं परितः प्रवर्द्धयन् ।
अन्तस्तमस्तोमहरः सराजतां
चैतन्यरूपो विधुरद्भुतोदयः ॥१॥

प्रमाणैर्विना प्रमेयसिद्धिर्नेत्यतस्तानि तावन्निरूप्यन्ते, तत्र प्रत्यक्षमेकं चार्वाकः, अनुमानञ्च वैशेषिकः, शब्दञ्च कपिलपतञ्जली, उपमानञ्च गौतमः, अर्थापत्यनुपलब्धी च मीमांसकः, ऐतिह्यसम्भवौच पौराणिकः, इति तत्तन्निर्णयेषु

प्रणम्य सच्चिदानन्दं गौरगदाधरं प्रभुम् ।
स्यमन्तकमणे र्व्याख्यां करोति हरिदासकः ॥

प्रमेय सिद्धिके निमित्त प्रमाणों की आवश्यकता होती है । उसके विना प्रमेय सिद्धि नहीं होती, अतः प्रथमतः उसका निरूपण करते हैं । चार्वाक के मतमें केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, वैशेषिक, प्रत्यक्ष अनुमान-प्रमाण द्वय को मानते हैं । कपिल, पतञ्जली, शब्द-प्रत्यक्ष अनुमान् तीन प्रमाण को मानते हैं । गौतम,-उक्त तीन प्रमाण के सहित उपमान को मानते हैं, अतः इनके मत में चार प्रमाण स्वीकृत है, मीमांसक, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि के सहित उक्त चार प्रमाणों को

पश्यामः*। तदित्थं प्रत्यक्षानुमानशब्दोपमानार्थापत्यनुपलब्धिसम्भवैतिह्यान्यष्टौ प्रमाणानि भवन्ति ॥२॥

तेष्वर्थसन्निकृष्टमिन्द्रियं प्रत्यक्षं,घटमहं चक्षुषा पश्यामीत्यादौ। अनुमितिकरणमनुमानं, गिरिर्वन्हिमान् धूमादित्यादौ। अग्न्यादिज्ञानमनुमितिः,-तत्करणं धूमादिज्ञानम्। आप्त वाक्यं शब्दः, यथा नदीतीरे पञ्चवृक्षाः सन्ति, यथा चाग्निष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादि।

उपमितिकरणमुपमानं, गो सदृशो गवय इत्यादौ; संज्ञा-संज्ञि-सम्बन्धज्ञानमुपमितिः, तत्करणं सादृश्यज्ञानम्।

अनुपपद्यमानार्थदर्शनेनोपपादकार्थान्तरकल्पनमर्थापत्तिः। पीनो देवदत्तो दिवा न भुंक्ते इत्यादौ, इह दिवाऽभुञ्जानस्य पीनत्वमनुपपन्नं तत्तस्य नक्तं भोजित्वं गमयति।

मानते हैं, अतः इन के मत में छः-प्रमाण स्वीकृत है, पौराणिक ऐतिह्य सम्भव को मानकर आठ प्रमाण वादी होते हैं। इस का विवरण उन उन के मतविवेचन के समय कहेंगे। इस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य, सम्भव-आठ प्रमाण होते हैं ॥२॥

उसमें से अपने अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संयुक्त होना ही प्रत्यक्ष है, जिस प्रकार "मैं घट को देखता हूँ" प्रभृति स्थानों में होता है। अनुमिति के करण को अनुमान कहते हैं। यथा-पर्वत में वह्नि है, कारण वहाँपर धूमदर्शन हो रहा है। यहाँ अग्नि आदि का ज्ञान अनुमिति है, धूम आदिका ज्ञान-उसका करण है।

यथार्थवक्ता के वाक्य को शब्द प्रमाण कहतेहैं, यथा—नदी के तीर में पञ्चवृक्ष हैं, स्वर्ग कामी व्यक्ति ज्योतिष्टोमयज्ञ करे।

उपमिति के करण को उपमान कहतेहैं, यथा, गौ के सदृश

घटाद्यनुपलब्ध्या घटाद्यभावोनिश्चितः अनुपलब्धिस्तूपलब्धेरभाव इत्यभावेन प्रमाणेन घटाद्यभावो गृह्यते । शते दशकं सम्भवतीति बुद्धौ संभावनं सम्भवः ।

अज्ञातवक्तृकतागतपारम्पर्यप्रसिद्धमैतिह्यं, यथेह वटे यक्षो निवसतीत्यादौ ।

अंगुल्युत्तोलनतो घटदशकादिज्ञानकरी चेष्टापि कैश्चन मानमिष्यते । एवं प्रमाणवादिनो विविधा ॥३॥

तेषु प्रत्यक्षमात्रवादिना चार्वाकेनाप्रतिपन्नः सन्दिग्धोविपर्यस्तो वा पुमान्नशक्योव्युत्पादयितुम् । न चार्वाग्दृशा प्रत्यक्षेण

गवय (वनगाय)होतीहै, इत्यादि वाक्यों में जो नाम नामीका सम्बन्ध ज्ञानहै, वह उपमितिहै, उसका जो सादृश्य ज्ञानहै, वह ही करण है ।

जिस के विना जिसका होना सम्भव नहीं है, अथच उसका उल्लेख स्पष्टतः नहीं है, कार्यसिद्धि के निमित्त उसका अनुसन्धान करना अर्थापत्ति है । यथा पीन देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता है । भोजन के विना स्थूल रहना असम्भव है, दिवा भोजन निषेध से रात्रि भोजन सिद्ध होता है । घटादि दिखाई न पड़ने से उसका अभाव निश्चित होता है । इस अभाव प्रमाण के द्वारा घट आदि के अभाव का ज्ञान होता है । एकशत में दस का होना सम्भव है, इस प्रकार बुद्धि में सम्भावना होने का नाम सम्भव प्रमाण है ।

कहने वाले का निर्णय नहीं है, अथच परम्परा से बात चली आती है, इसे ऐतिह्य प्रमाण कहते हैं, यथा इस वट वृक्ष में यक्ष रहता है । अङ्गुली निर्देश के द्वारा संख्या का ज्ञान कराने वाली चेष्टा को भी कुछ लोक प्रमाण मानते हैं इस प्रकार प्रमाणवादीगण विभिन्न प्रकार के होते हैं ॥३॥

उन में से केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानने वाले चार्वाक है,

पुरुषान्तरवर्तिनोऽज्ञानसन्देहविपर्ययाः शक्याः प्रतिपत्तुम् । नचानवधृतपरगताज्ञानादिर्वक्तुं प्रवृत्तो ग्राह्यवाक् प्रेक्षावतां॥४

तस्मादनिच्छतापि तेनानुमानमुपादेयमेच, अतः स परिहस्यते

" चार्वाक तव चार्वाङ्गी, जारतो वीक्ष गर्भिणीम् ।
प्रत्यक्षमात्रविश्वासो घनश्वासं किमुज्झसीति ॥

तेन च परगतानज्ञानादीनभिप्रायभेदाद्वाक्यभेदाल्लिङ्गादनुमाय तदज्ञानादिपरिहारो प्रवृत्तो ग्राह्यवाक्स्यादिति ।५

यत्तु शब्दोपमानयोर्नैव पृथक् प्रामाण्यमिष्यते, अनुमाने गतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतमित्याहुस्तन्मन्दं, ग्रहचेष्टादावनुमानाप्रवृत्तेः, विशेषन्तूपरिवदिष्यामः । तदेव प्रत्यक्षानुमानशब्दाः प्रमाणानीति वृद्धाः, उपमानादीनामेष्वन्त-

---

वह सन्दिग्ध एवं भ्रान्त व्यक्ति का निर्णय नहीं कर सकेगा, कारण चार्वाक् अपर पुरुषगत अज्ञान सन्देह-विपर्यय का प्रतिपादन प्रत्यक्ष से कैसे करेगा। जो दूसरे की अज्ञानता को नहीं जानता है, उसकी बात् को विज्ञ व्यक्ति ग्रहण नहीं करते हैं ॥४॥

अतएव अनिच्छा से भी अनुमान प्रमाण को स्वीकार उन्हें करना ही पड़ेगा। अतः वह दूसरे का उपहास पात्र भी वन जाता हैं--हे चार्वाक ! तुम तो प्रत्यक्ष वादी हो, किन्तु तुम्हारी मनोहरा पत्नी उपपति से गर्भिणी हो चूकी है, यह जान कर चिन्तित क्यों हो रहे हो ? अतः जो प्रमाण अभिप्राय भेद, वाक्य भेद, एवं चिह्न को देखकर अनुमान से दूसरे के अज्ञान को जान कर उसे दूरकरने में प्रवृत्त होता है, वह प्रामाणिक होता है ॥५॥

वैशेषिक का कथन है कि शब्दोपमान का पृथक् प्रामाण्य नहीं है, वह अनुमान में अन्तर्भुक्त हो जाता है, यह कथन ठीक नहीं है,

र्भावात् पृथक् प्रमाणता नेत्याहुरिति ॥६॥

तथाहि, उपमानं खलु यथा गौ स्तथा गवय इति वाक्यम् तज्जनिता च धीरागम एव, गवय शब्दो गो सदृशस्याभिधायीति यः प्रत्ययः सोप्यनुमानमेव। यः शब्दो वृद्धैर्यत्रार्थे प्रयुज्यते सोऽसति वृत्यन्तरे तस्याभिधायी, यथा गोशब्दो-गोत्वस्य। प्रयुज्यते च गोसदृशे गवय शब्द इति तस्यैव सोऽभिधायीतिज्ञानमनुमानमेव। यत्तु चक्षुः सन्निकृष्टस्य गवयस्य गो सादृश्यज्ञानं तत् प्रत्यक्षमेवेति नोपमानं पृथक् वाच्यं ॥७॥

यत्तु दिवाऽभुञ्जाने पीनत्वं नक्तं भुक्ति विना नोपपद्यते अतः

ग्रह की चेष्टा को जानने के लिए अनुमान समर्थ नहीं होता है। इस विषय का अग्रिम ग्रन्थ विशेष रूप से कहेंगे। अतएव वृद्धगण प्रत्यक्षानुमानशब्द को प्रमाण मानते हैं, उपमानादिका अन्तर्भाव इस में होने से उस सब की पृथक् प्रमाणता नहीं मानते हैं ॥६॥

यथा—उपमान वह है—जिस में यथा गो, तथा गवय वाक्य होता है। गवय शब्द गो सादृश्य का बोधक है, वह प्रायकर अनुमान में गतार्थ हो जाता है। वृद्धगण निज शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में करते हैं, उसका बोध उस से होने से उसे अभिधावृत्ति कहते हैं, जैसे गो शब्द से गो का बोध होता है, गो सदृश गवय शब्द उसका ही बोधक है, अतः यह ज्ञान—अनुमान ही है, चक्षु सन्निकृष्ट गवय में गो सादृश्य जो ज्ञान होता है, वह तो प्रत्यक्ष ही है, अत उपमान पृथक् प्रमाण नहीं है ॥७॥

वह दिन में भोजन नहीं करता है, किन्तु स्थूल है, भोजन के बिना स्थूलत्व अनुपपन्न है, अतः रात्रि में वह व्यक्ति अवश्य भोजन

पीनत्वान्यथाऽनुपपत्ति प्रसूतार्थापत्तिरेव रात्रिभोजने प्रमाण-मिति तन्न । तस्यानुमानेऽन्तर्भावात् । अयं रात्रौ भुंक्ते, दिवाऽभुञ्जानत्वेसति पीनत्वात्; यस्तु रात्रौ न भुंक्ते, न स दिवाऽभुञ्जानत्वे सति पीनः । यथा दिवारात्रौचाभुञ्जानो-ऽपीनः । नचायं तथा, तस्मात्तथेति केवलव्यतिरेकानुमान-गम्यमेतत् ॥८॥

अनुपलब्धिश्च न पृथक् प्रमाणं, घटाद्यभावस्य चाक्षुषत्वात्, अभावं प्रकाशयदिन्द्रियं स्वसंम्बन्धाभावविशेषणमुखेनेति नाप्रसङ्गः ॥

करता है, इस प्रकार कल्पना से ही अर्थापत्ति में प्रामाण्य आता है, किन्तु यह तो अनुमान मात्र है, वह रात में भोजन करता है, क्योंकि दिन में भोजन न करने पर भी स्थूल है, जो व्यक्ति दिन में भोजन नहीं करता है, वह दिन में भोजन किये विना स्थूल नहीं हो सकता है, जिस प्रकार दिनरात भोजन परित्याग करने से स्थूल नहीं होता, यह वैसा नहीं है, अतएव वह भोजन करने वाला है, यह बात केवल व्यतिरेक अनुमान से सिद्ध होती है ॥८॥

अनुपलब्धि भी पृथक् प्रमाण नहीं है, कारण घट आदि का अभाव नेत्र से दिखाई देता है, इन्द्रिय स्वयं विषयके साथ संयुक्त होती है, और विशेषण बन कर अभाव को प्रकाश करती है, अतः इन्द्रिय ही अभाव के प्रत्यक्ष में प्रमाण है, इस में कोई दोष नहीं है ।

और सम्भव भी पृथक् प्रमाण नहीं हो सकता है, वह तो शत में दस का होना होता है, उसका निर्वाह भी अनुमान से ही होता है, क्यों कि सौ दस के विना नहीं हो सकते, इस से शत में दश का होना निश्चित है ।

ऐतिह्य भी किसी निश्चित वक्ता के निर्णय के बिना संशयाक्रान्त

सम्भवस्तु शतेदशकाद्यवगमः, स चानुमानमेव, शतत्वं हि दशकाद्यविनाभूतं शते दशकादिसत्त्वमवगमयतीति ॥

ऐतिह्यन्त्वनिर्दिष्टवक्तृकत्वेन सांशयिकत्वान्नप्रमाणं। आप्त-वक्तृकत्वे निश्चिते तु तस्यागमान्तर्भाव एवेति त्रीण्येव प्रमाणानि—

प्रत्यक्षञ्चानुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्य्यं धर्म्मशुद्धिमभीप्सतेति ॥९॥

तत्र प्रत्यक्षं स्थूलमेव सन्निकृष्टं गृह्णाति, नातिदूरं नचाति-समीपं यथा खमुत्पतन्तं पक्षिणं, यथा च नेत्रस्य अञ्जनम्। मनस्यनवस्थिते स्थूलमपि तत्र न गृह्णाति, यदुक्तं—मे मनोऽन्यत्रगतं मया न दृष्टमित्यादि। अभिभूतमनुद्भूतञ्च संपृक्त-मतिसूक्ष्मञ्च तन्नगृह्णाति, यथा रविकिरणाभिभूतं ग्रहनक्षत्र

होकर प्रमाण नहीं बनता है। यदि वक्ता निश्चित एवं प्रत्यक्ष दर्शी हो तो ऐतिह्य आगम प्रमाण में अन्तर्भाव ही जाता है। इस प्रकार तीन ही प्रमाण हैं, श्रीमद् भागवत में उक्त है—प्रत्यक्ष अनुमान एवं आगमादि शास्त्रों को धर्म निर्णय में प्रमाण मानना आवश्यक है ॥९॥

उन में प्रत्यक्ष प्रमाण, निकटवर्त्ति स्थूल वस्तु को ग्रहण करता है, अति दूरस्थ एवं अति समीपस्थ वस्तु को ग्रहण नहीं करता है। यथा आकाश में उड़ते हुए पक्षी को, एवं नेत्रस्थ अञ्जन को नहीं देखता है। अनवस्थित मन से निकटस्थ स्थूल वस्तु को भी नही देख पाता। कहा जाता है—कि मेरा मन अन्यत्र संलग्न था, अतः मैं नहीं देख पाया। अभिभूत, अनुद्भूत, संसक्त और अतिसूक्ष्म वस्तु को भी वह ग्रहण नहीं करता है। जिस प्रकार सूर्य्य की

मंडलं,यथा क्षीरे दधिभावं, यथा च जलाशये जलदविमुक्तान् जलबिन्दून्, यथा प्रत्यक्षं सन्निकृष्टमपि परमाणून् ॥१०॥

क्वचिद्वयभिचरति चैतत्, मायामूर्द्धाऽवलोके यज्ञदत्तस्यैवायं मूर्द्धेत्यादौ, यद्यप्यप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि लिङ्गादनुमानं प्रवर्तयितुमलं, तथापि तत् क्वचिद्व्यभिचारदृष्टं, वृष्टयातत्काले निर्वापितवह्नौ चिरमधिकोदित्वरधूमे–पर्वते वह्निमान् धूमादित्यादौ ॥११॥

तदेवं मुख्ययोरनयोर्व्यभिचारित्वात्, तदन्येषान्तु तदुपजीविनां सुसिद्धं तत् ।

आप्तवाक्यलक्षणः शब्दस्तु कुत्रापि न व्यभिचरति, हिमालये हिमं रत्नालये रत्नमित्यादि ।

रविकान्ताद्रविकरसंयोगे वह्निरुत्तिष्ठतीत्यादिः ।

किरणों से ढके हुए ग्रहनक्षत्र को, दूध में दधि को, जलाशय में गिरी हुई वर्षा की बुन्दों को, तथा प्रत्यक्ष सन्निकृष्ट होने पर भी परमाणु नहीं देखता है ।।१०।।

कहीं पर इस प्रत्यक्ष का व्यभिचार भी होता है । मायामुण्ड को देखकर प्रतीत होता है कि यह मुण्ड यज्ञदत्तका ही है। यद्यपि अप्रत्यक्ष वस्तु में चिह्न को देखकर अनुमान हो सकता है, तथापि उसका कहीं पर व्यभिचार भी होता है। वृष्टि से तत् काल निर्वापित वह्नि से उत्थित धूम को देखकर अनुमान होता है कि–पर्वतपर वह्नि है, कारण धूम दिखाई देता है ।।११।।

प्रमाणों में प्रत्यक्ष अनुमान मुख्य है, उन दोनों में व्यभिचार दृष्ट होने पर उस के अवलम्बन से जो भी प्रमाण होगा। वह सुतरां दूषित होगा। आप्त वाक्य रूप शब्द प्रमाण का व्यभिचार कभी भी नहीं होता है, जिस प्रकार हिमालय में हिम है, रत्नालय में रत्न है,

स खलु तन्निरपेक्षस्तदुपमर्द्दीतदविरोध्यस्तत् सचिवस्तदनुग्राही तद्गम्य साधकतमश्च दृष्टः ॥१२॥

तथाहि दशमस्त्वमसीत्यादौ तन्निरपेक्षः, स एव शब्दः श्रोत्रं प्रविशन्नेव दशमोऽहमस्मीति प्रमायास्तिरस्कारिणं मोहं विनिवर्त्तयतीति तत्वं स्पष्टम् ॥१३॥

सर्पदष्टे त्वयि विषं नास्तीति मंत्र इत्यादौ, वह्नितप्तमङ्गं वह्नितापेन साम्यतीत्यादौ च तदुपमर्दकत्वं; सौवर्णम्भसितं स्निग्धमित्यादौ एकमेवौषधं त्रिदोषघ्नमित्यादौ, च स्वप्रतिपादिते ताभ्यामविरोधत्वञ्च, अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादौ, हीरकगुणविशेषमदृष्टवद्भिः पार्थिवत्वेन सर्वं पाषाणादि द्रव्यं लोहच्छेद्यमित्यनुमातुं शक्यं, न तु श्रुततादृशगुणकं हीरकं तच्छेद्यमित्यादौ च यथाशक्तिताभ्यां साचिव्यकरणं।

सूर्य्यकान्तमणि के साथ सूर्यकिरणों के संयोग से अग्नि उत्पन्न होती है।

यह शब्द प्रमाण,–उन प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता है, अपितु उपमर्दक है, उन प्रमाणों के प्रति अनुग्रह भी करता है एवं जहाँ प्रत्यक्षानुमान की गति नहीं होती है उस अगम्य पदार्थ का भी साधन शब्द प्रमाण करता है ॥१२॥

जिस प्रकार "दशमस्त्वमसि" 'दशम तुम हो' इत्यादि स्थलों में प्रत्यक्ष अनुमान की अपेक्षा न कर के ही स्वतन्त्र रूप से शब्द कान में प्रविष्ट होते हुए ही प्रतीति होती है, और भ्रम दूर हो जाता है, इस से शब्द प्रमाण की निरपेक्षता स्थापित होती है ॥१३॥

सर्पदष्ट व्यक्ति के शरीर से मन्त्र द्वारा विष का अपसारण कर जब कह दिया जाता है कि अब तुम्हारे शरीर में विष नहीं है, अग्नि दग्ध ज्वाला की शान्ति ताप से ही होती है, इत्यादि स्थलों

दृष्टचरमायामूर्ध्नः पुंसोभ्रान्त्याप्यविश्वस्ते स एवाय-मित्याकाशवाण्यादौ, लोहच्छेद्यं पाषाणादौ, अरे शीतार्त्ताः पान्थामास्मिन् वह्निं सम्भावयत दृष्टमस्माभिरत्रासौ वृष्ट्याधुनैव निर्वाणः किंत्वस्मिन् धूमोद्गारिणि गिरावसाव स्तीति,तेनैव ते बद्धमूले प्रतीते तच्छब्दगम्ये साधकतमत्वञ्च, ग्रहाणां राशिसञ्चारे सूर्योपरागादौ च ॥१४॥

तदेवं सर्वतः श्रेष्ठे शब्दस्य स्थिते तत्त्वनिर्णायकस्तु श्रुतिलक्षण

में शब्द प्रमाण, प्रत्यक्ष अनुमान का उपमर्दक है„ सुवर्ण भस्म स्निग्ध है, एक ही ओषधि त्रिदोषघ्नी है, इत्यादि स्थलों में शब्द प्रमाण, प्रत्यक्ष अनुमान का अविरोधी है, अग्नि शीत की ओषधि है, इत्यादि स्थल में एवं हीरक के गुण को न जानने वाला उसे पत्थर जान कर "सभी पत्थर लोहे से कट जाते हैं, ऐसा अनुमान कर सकता है, किन्तु जिसने हीरक का गुण सुना है, कि लोहे से हीरा नहीं कटता है,वह ऐसा अनुमान नहीं कर सकता है,उक्त स्थलों में प्रत्यक्ष अनुमान दोनों शब्द प्रमाण का ही अनुगमन करते हैं। पहले कृत्रिम मस्तक को देखकर भी अविश्वास कर बैठता है। तब आकाश वाणी से ज्ञात होता कि-यह उसी मनुष्य का मस्तक है, इस अवस्था में,, लोहे के द्वारा पत्थर कटता है, अरे शीतार्त्त पथिक ! यहाँ वह्नि वृष्टि से निर्वापित हो चुकी है, उस पर्वत पर वह्नि है, क्योंकि वहाँ से धूम निकल रहा है। इत्यादि स्थलों में उसी शब्द से ही वे प्रत्यक्ष अनुमान बद्धमूल प्रतीत होते हैं, जहाँ पर प्रत्यक्ष अनुमान को गति नहीं है वहाँ शब्द ही साधकतम है, जिस प्रकार ग्रहों के राशियों में सञ्चरण का परिज्ञान, और सूर्य्य चन्द्र ग्रहण का परिज्ञान भी केवल शब्द प्रमाण से ही होता है ॥१४॥

समस्त प्रमाणों में शब्द प्रमाण की श्रेष्ठता निष्पन्न होने से श्रुति स्वरूप शब्द ही प्रमाण है। केवल आर्षशब्द गम्य शब्द प्रमाण

एव, नत्वार्थलक्षणोऽपि "नावेदविन्मनुते तं वृहन्तमौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीत्यादि" श्रुतिभ्यः ऋषीणां मिथो विवाददर्शनेन तद्वाक्यानां तन्निर्णायकत्वासम्भवात्, नित्यः श्रुतिशब्दः; वाचाविरूपनित्येति श्रवणात् "अनादिनिधनानित्यावागुत्सृष्टास्वयंभुवा । आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः । इत्यादि स्मरणाच्च । भ्रमादिदोषविशिष्टजीवकर्तृकत्व विरहान् निर्दोषश्च स एव भवति ॥१५॥

इति वेदान्तस्यमन्तके प्रमाणनिर्णयः प्रथमः किरणः ।

❀ द्वितीयः किरणः ❀

अथ प्रमेयाणि निर्णीयन्ते । तानि च पञ्चधा; ईश्वर, जीव,

नहीं है । " नावेदविन्मनुते तं वृहन्तमौपनिषदं पुरुषं पृच्छामी" वेद को न जानने वाला वृहत् वस्तु को नहीं जानता है, उपनिषद्द् प्रति पाद्य पुरुष को जानना चाहता हूँ । ऋषियों में परस्पर विवाद होने के कारण उनके वाक्य तत्त्व निर्णय करने में असमर्थ है, श्रुति शब्द नित्य है ।

मनोहर वेदवाणी नित्य है, आदि अन्त से रहित नित्या वाणी स्वयम्भू से प्रकट हुई है, सब से पहली वेदमयी विद्या है, जिस से सबकी प्रवृत्ति होती है । इत्यादि वाक्यों से प्रतिपन्न होता है कि भ्रमादि दोष युक्त जीव के वाक्य न होने से वेदमयी वाणी ही निर्दोष है ॥१५॥

❀ द्वितीयः किरणः ❀

सम्प्रति प्रमेय पदार्थ का निरूपण करते हैं । ईश्वर, जीव,

प्रकृति, काल, कर्म भेदात्, तत्र विभुः, विज्ञानानन्दः सार्वज्ञादि गुणवान् पुरुषोत्तम ईश्वरः "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यः सर्वज्ञः सर्ववित्, सत्यकामः सत्य संकल्पः, स उत्तमः पुरुष" इत्यादि श्रवणात् ।

स च सर्वेषां स्वामी, जनिविनाशशून्यः। "तमीश्वराणां परमं महेश्वरं, तं देवतानां परमञ्च दैवतं। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदामदेवं भुवनेशमीड्यमिति ॥" "स कारणानां कारणाधिपाधिपो, नचास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।" इति च श्रवणात् ॥१॥

तस्यैवम्भूतस्य क्वचित् जन्मत्वहीन स्वरूपस्वभावस्याविर्भाव मात्रं बोध्यम्। 'अजायमानो बहुधा विजायते' इतिश्रुतेः। "अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं

प्रकृति, काल एवं कर्म नामक प्रमेय पाँच प्रकार हैं, इन में ईश्वर, व्यापक, विज्ञानानन्द, सर्वज्ञादि गुणवान् एवं पुरुषोत्तम है, यथा श्रुतिः—विज्ञानानन्द ब्रह्म है। ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है, जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, सत्य काम है, सत्य सङ्कल्प है, और उत्तम पुरुष है। वह सबका अधिप है, जन्म विनाश से शून्य है, समस्त ईश्वरों के ईश्वर परम महेश्वर को; देवताओं के भी परम देवता को पतिओं के भी पति को, पर से भी पर को, भुवनों के स्वामी एवं स्तुति करने योग्य देव को हम जानना चाहते हैं। वह कारणों का कारण, अधिपों का अधिप है, उनका कोई जनक नहीं है, न कोई अधिपति ही है ॥१॥

श्रुति प्रमाणों के अनुसार प्राकृत जन्म विहीन ईश्वर के स्वरूप स्वभाव का आविर्भाव मात्र ही होता है। उस का उल्लेख

स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममाययेति ।।" स्मृतेश्च । अतएव इहास्य विज्ञानान् मुक्तिरित्युक्तम् । "जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः । त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुनेति" ।।२।।

ननु ब्रह्मरुद्रादयोपि लोकेश्वराः कथ्यन्ते, सत्यं, भवन्तु ते ईश्वराः सामर्थ्ययोगात्; पारमैश्वर्य्यन्तु हरेरेव, तमीश्वराणामित्यादि श्रुतेः । ततश्च राजसेवकेष्वपि राजत्ववत्तेष्व धीश्वरत्वतद्गुणांशयोगाद्भाक्तं सिध्यति ।।

ब्रह्मादयो हि हरेरुत्पन्ना, श्रूयन्ते, श्रीनारायणोपनिषदि, अथ पुरुषो ह वै नारायणो अकामयत प्रजाः सृजेयेत्यारभ्य नारायणात् ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रो जायते, नारायणात्

इस प्रकार है,–"अजन्मा होकर भी जन्म ग्रहण करते हैं" गीतोनिषद् में उक्त है, " अज होकर, अव्ययात्मा एवं भूतों का ईश्वर होकर भी अपनी स्वरूप शक्ति को अवलम्बन कर कृपापूर्वक आविर्भूत होता हूँ । अत: ईश्वर के जन्म कर्म को जानने से ही मुक्ति होती है "हे अर्जुन ! मेरे इस प्रकार जन्म कर्म को जो तत्त्वत: जानता है, वह शरीर को त्यागकर पुनर्वार जन्म नहीं लेता है, और मुझ को प्राप्त करता है ।।२।।

ब्रह्म रुद्र भी लोकेश्वर होते हैं ? सत्य है, वे सामर्थ्य के योग से ईश्वर हैं, परमेश्वर तो श्रीहरि ही हैं। श्रुति इस प्रकार है--वह ईश्वरों का भी ईश्वर हैं, जिस प्रकार राज सेवक को भी राजा कहा जाता है, उस प्रकार भगवान् के कुछ गुणांश के योग से उन दोनों का ईश्वर होना होता है ।

नारायणोपनिषद् में उक्त है--ब्रह्मा आदि की उत्पत्ति श्रीहरि

प्रजापतिः प्रजायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणादष्टौ वसवो जायन्ते, नारायणादेकादशरुद्रा जायन्ते, नारायणाद् द्वादशादित्या जायन्ते, इत्यादिना ॥

महोपनिषदि च, एको ह वै नारायण आसीन् न ब्रह्मा न ईशानः इत्यारभ्य तस्य ध्यानान्तस्थस्य ललाटात्त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत, बिभ्रच्छ्रियं सत्यं ब्रह्मचर्यं तपो वैराग्यमित्यादि । तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखो जात इत्यादि च श्रूयते ॥३॥

नारायण शब्दः खलु श्रीपतेरेव संज्ञा "पूर्व्व पदात् संज्ञाया मग" इति तस्यामेवणत्वविधानात् ॥४॥

श्रीविष्णुपुराणे च—यस्य प्रसादादहमच्युतस्य, भूतः प्रजासृष्टि करोऽन्तकारी । क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये

से ही हुई है, आदि पुरुष श्रीनारायण का कथन है, नारायण ने प्रजा सृजन करने की इच्छा की, उस समय नारायण से ब्रह्मा हुए, नारायण से रुद्र हुए, नारायण से प्रजापति हुए, नारायण से इन्द्र हुए, नारायण से अष्टवसु हुए नारायण से एकादश रुद्र हुये; नारायण से द्वादश आदित्य हुए ।

महोपनिषद् में उक्त है--सृष्टि के आदि में एकमात्र नारायण ही थे, न ब्रह्मा थे, न ईशान, इस से आरम्भ कर श्रुति कहती है, ध्यानस्थ उन नारायण के ललाट से त्रिनेत्र शूलपाणि पुरुष आविर्भूत हुए, जो श्री, सत्य, ब्रह्मचर्य्य, तप, वैराग्य को धारण किये हुये थे, वहाँ चतुर्म्मुख ब्रह्मा के होने का संवाद भी है ॥३॥

नारायण शब्द तो श्रीपति की संज्ञा है, "पूर्वपदात् संज्ञाया मगः" पाणिनी के सूत्र से संज्ञा में ही णकार का विधान है ॥४॥

श्रीविष्णु पुराण में उक्त है--जिन अच्युत की अनुकम्पा से

पुरुषः परस्तादित्यादि । मोक्षधर्मे च; प्रजापतिञ्च रुद्रं चाप्यहमेव सृजामि वै । तौ हि मां न विजानितो मम माया विमोहिताविति । छन्दोगास्तु रुद्रं विधिपुत्रं पठन्ति । विरूपाक्षाय धात्रंशाय विश्वदेवाय सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय जेष्ठायामोघाय कर्म्माधिपतये इति । शतपथे चाष्टमूर्त्त ब्राह्मणे–संवत्सरात् कुमारोऽजायत । कुमारो अरोदीत्, तं प्रजापतिरब्रबीत्, कुमार ! किं रोदिषि ? यन्न मम तपसो जातोसीति, सोऽब्रबीत्, अनपहतपाप्माहमस्मि हन्त नामानि मे देहीत्यादिना ।

श्रीवाराहे च नारायणः परोदेवस्तस्माज्जातश्चतुर्मुखः । तस्माद्रुद्रो भवेद्देवः स च सर्वज्ञताङ्गत इति तदिदञ्च कल्पभेदात् संगमनीयम् ॥५॥

प्रजासृष्टिकारी ब्रह्मा मैं हूँ। क्रोध से संहारावतार रुद्र हुए, एवं पालन कर्त्ता परम पुरुष सृष्टि के मध्य में आविर्भूत होते हैं। मोक्ष धर्म में लिखित है--प्रजापति, और रुद्र को मैं उत्पन्न करता हूँ। वे दोनों मेरी माया से मोहित होकर मुझ को नहीं जानते हैं, छान्दोग्योपनिषद् में उक्त है, रुद्र ब्रह्मा के पुत्र हैं। विरुपाक्ष,–धाता के अंश, विश्वदेव, सहस्राक्ष, ब्रह्मा के पुत्र, ज्येष्ठ, अमोघ एवं कर्माधिपति के निमित्त, प्रभृति ॥ शतपथ के अष्टमूर्त्त ब्राह्मण में लिखा है, सम्वसर में कुमार उत्पन्न हुए, कुमार रोने लगे, तब प्रजापति ने पुछा, कुमार ! क्यों रोते हो ? क्यों कि मेरे तपसे उत्पन्न हुए हो। उन्होंने कहा—मैं पाप से मुक्त नहीं हूँ मुझको नाम प्रदान कीजिये।

श्रीवाराह पुराण में उक्त है--नारायण परम देव हैं, उन से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन्हीं से रुद्र हुये, जो सर्वज्ञता को प्राप्त

ननु महेशादि समाख्यया रुद्रपारतम्यं मन्तव्यं, मैवं। तस्या महेन्द्रादि समाख्यावद्वैफल्यात्। इन्द्र समाख्यैव शक्रस्य तत् साधयेत्। "इदि पारमैश्वर्ये" इति धातु पाठात्, किं पुनर्महत्व विशेषितासौ, तस्यानीश्वरत्वं सर्वाभ्युपगतं, ऐश्वर्य्यञ्च कर्म्मायत्वं शतमखसमाख्यावगम्यते। एवं महादेव समाख्यापि देवराज समाख्यावद्बोध्या। तथा च प्रबल प्रमाणबाधात् सा सा च निष्फलैव महावृक्षसमाख्या-वद्भवेत् ॥६॥

विधिरुद्रयोर्यज्ञपुरुषाराधनाल्लोकाधिकारित्वं भारतेस्मर्य्यते। "युगकोटिसहस्राणि विष्णुमाराध्यपद्मभूः। पुनस्त्रैलोक्यधातृत्वं प्राप्तवानिति शुश्रुम" इति। मया सृष्टः पुराब्रह्मामद्यज्ञमयजत्

हुए, यह वृत्तान्त कल्प भेद का है ॥५॥

यदि कहा जाय कि–महेश्वर नाम ही रुद्र की महेश्वरता का सूचक है? ऐसा कहना ठीक नहीं है, कारण वह महेन्द्र नाम के समान संज्ञा शब्द है, उसका यथार्थ अर्थ नहीं है। "इदि" धातु से इन्द्र शब्द बनता है, उस से परमेश्वर का बोध होता है, इस से शक्र का परमैश्वर्य्य सिद्ध होता है, पुनर्वार इन्द्र शब्द के साथ महाशब्द का योग होता है तो उस से कुछ भी विशेष अर्थ का बोध नहीं होता है, इन्द्र ईश्वर नहीं है, ईश्वर के अधीन है, उसका जो भी ऐश्वर्य है, वह कर्माधीन है। शतमख का निर्विघ्न अनुष्ठान से इन्द्र पद मिलता है। इस प्रकार महादेव नाम भी देवराज नाम के समानार्थक है। अतः प्रबल प्रमाण न होने से महावृक्ष समाख्या के समान महेन्द्र, महेश, महादेव नाम भी व्यर्थ है ॥६॥

महाभारत से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा एवं रुद्र ने यज्ञ पुरुष श्रीविष्णु की आराधना से ही लोकाधिपत्य को प्राप्त किया है। कोटि

स्वयम् । ततस्तस्य वरान् प्रीतो ददावहमनुत्तमान् ॥ मत्पुत्रत्वञ्च कल्पादौ लोकाध्यक्षत्वमेव चेति । युधिष्ठिर शोकापनोदने च—विश्वरूपो महादेवः सर्व्वमेधे महाक्रतौ । जुहाव सर्व्वभूतानि स्वयमात्मानमात्मनेति । महादेवः सर्व्वमेधे महात्माहुत्वात्मानं देवदेवो बभूव । विश्वांल्लोकान् व्याप्यविष्टभ्य कीर्त्त्या विराजते द्युतिमान् कृत्तिवासा इति ।७

पशुपतित्वञ्च रुद्रस्य वरायत्वं श्रुतिराह । सोऽब्रवीद्वरं वृणीष्व । अहमेव पशुनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः पशूनामधिपतिरिति ॥८॥

वेदापहारापद्रक्षा च विधेर्हरि कर्तृकैवेति पाद्मे पठ्यते ।

युग सहस्र विष्णु की आराधना करके ब्रह्मा जीने पुनर्वार त्रिलोक के धाता पद को प्राप्त किया है; ऐसा सुना जाता है । पहले मैंने ब्रह्मा को उत्पन्न किया, उसने यज्ञ के द्वारा मेरा पूजन किया तो मैंने उसे उस सर्वोत्तम वर दान किया कि--कल्प के आदि में तुम मेरे पुत्र होकर लोकाध्यक्ष बनोगे। युधिष्ठिर के शोकापनोदन करते समय वर्णन है कि-विश्व रूप महादेव ने सर्वमेध यज्ञ के द्वारा समस्त भूतों का एवं अपनी आत्मा का हवन किया था। सर्वमेध यज्ञ में आत्मा हूति प्रदान से देवाधिदेव पद मिला, और अपनी कीर्त्ति को सर्वत्र विस्तार कर कृत्तिवास नामसे आप अतिशय रूपमें प्रकाशित हुए ।७।

श्रुति से ज्ञात होता है-कि--रुद्र पशुपति नाम प्राप्त किए थे वर से। उस प्रजापति ने कहा-वर लो, कुमार ने कहा मैं पशुपति बनना चाहता हूँ। उस प्रकार वर प्राप्त कर ही रुद्र पशुओं के पति हो गये !।८।।

पद्म पुराण में उक्त है, वेद अपहृत होने से विपत्ति से ब्रह्मा की रक्षा भगवान् हरि ने की थी प्रजापति के बध रूप पाप से रुद्र को

विधिवधपापाद्रुद्रो हरिणा मोचित इतिस्मर्य्यते, मात्स्ये रुद्रोक्तिः । "ततः क्रोधपरीतेन संरक्त नयनेन च
वामाङ्गुष्ठः नखाग्रेण छिन्नं तस्य शिरो मयेति ॥
ब्रह्मोक्तिश्च, यस्मादनपराधस्य शिरः छिन्नं त्वया मम ।
तस्माच्छाप समायुक्तः कपालीत्वं भविस्यसीति ।
रुद्रोक्तिश्च, ब्रह्महा कुपितो भूत्वा चरन् तीर्थानिभूतले ।
ततोऽहं गतवान् देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥
तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः ।
ततस्तेनस्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम् ।
महत्यः स्रुग्वती धारा स्तस्य पार्श्वे विनिःसृताः ।
विष्णु प्रसादात् सुश्रोणि! कपालं तत् सहस्रधा ।
स्फुटितं बहुधायातं स्वप्नलब्धधनं यथेति ॥९॥
दुर्ज्जयत्रिपुरहेतुकापद्विस्तारो हरिहेतुकः स्मर्य्यते भारते ।

श्रीहरि ने ही बचाया । मत्स्य पुराण में शिवजीने स्वयं ही कहा है, "मैंने आरक्त नेत्र क्रुद्ध होकर वामाङ्गुष्ठ के नखाग्र के द्वारा ब्रह्मा के मस्तक को काट डाला ।" ब्रह्मा जीने कहा—अपराध के बिना तुमने मेरा शिरच्छेदन क्यों किया ? अतः मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि—तुम कापाली 'नरमस्तक का खप्पर रखने वाले' हो जाओ, रुद्र ने कहा मैं ब्रह्महत्या पापसे व्याकुल होकर पृथिवीस्थ समस्त तीर्थों में भ्रमण करने लगा । हेवि ! मैं हिमालय पर्वत में गया, वहाँ जाकर श्रीनारायण से भिक्षा मागी, तब उन्होंने निज नखाग्र से उस खप्पर को विदीर्ण कर दिया, उस से महावेग से एक धारा निकली । हे सुश्रोणि ! श्रीविष्णु की अनुकम्पा से उस कपाल (खोपड़ी) स्वप्न में प्राप्त धन के समान सहसा सहस्र टुकड़े हो गये ॥९॥

महाभारत में उक्त है,—दुर्जय त्रिपुरासुर से उत्पन्न विपत्ति

विष्णुरात्मा भगवतो भवस्यामित तेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्या संस्पर्शं स विसेहे महेश्वरः इति ।

विष्णुधर्म्मे च—त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरं ।
शङ्करस्य कुरुश्रेष्ठरक्षणाय निरूपितमिति ।

जृम्भणास्त्रेण वाणयुद्धापतितो रक्षितः स्मर्यते वैष्णवे—
जृम्भणास्त्रेण गोविन्दो जृम्भयामास शङ्करं,
ततः प्रणेशुर्दैतेयः प्रमथाश्च समन्ततः ।
जृम्भाभिभूतस्तु हरो रथोपस्थ उपाविशत् ।
न शशाक तदा योद्धुं कृष्णेनाक्लिष्टकर्म्मणेति १०

श्रीरामायणे परशुरामोक्तिः—
हुङ्कारेण महावाहुस्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः ।
जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः ।
अधिकं मेनिरेविष्णुं देवाः सर्षिगणास्तदेति ।

से श्रीविष्णु ने रुद्र की रक्षा की, अमित तेजाः भगवान् भवकी आत्मा विष्णु ही हैं, अतः धनुषकी प्रत्यञ्चा का स्पर्श करने की शक्ति महादेव में आई विष्णुधर्म में उक्त है,—हे कुरुश्रेष्ठ ! पहले त्रिपुरासुरका वध जिन्होंने किया था, उन शङ्कर की रक्षा के निमित्त ब्रह्मा जीने विष्णु पञ्जर स्तोत्र का वर्णन किया था। वाणासुर के युद्ध में जृम्भणास्त्र से शङ्कर की जंभाई श्रीहरि ने ही की थी, इसका विवरण विष्णु पुराण में है, जृम्भणास्त्र के द्वारा श्रीगोविन्द ने शङ्कर को जृम्भित कर दिया, अर्थात् उन्हें जम्भाई आनेलगी, उस समय दैत्य एवं प्रमथ गण अच्छीतरह विनष्ट हो गये। महादेव रथ में बैठ कर केवल जम्भाई लेने लगे और अक्लिष्ट कर्मा श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने में असमर्थ रहे ॥१०॥

श्रीरामायण में श्रीपरशुराम जीने कहा है कि—हुङ्कार मात्र से ही महाबाहु त्रिलोचन जम्भाई लेने लगे। श्रीविष्णु के प्रताप से

नरसखेन नारायणेन सहयुद्धयमानस्तेन संजिहीर्षितोब्रह्मणो प्रबोधितः प्रपत्या तेन संरक्षितः स्मर्य्यंते भारते,प्रसादयामासः भवो देवं नारायणं प्रभुं। शरणञ्च जगामाद्यं वरेण्यं वरदं हरिमित्यादिना, कालकूटान्निस्तारश्च तत्कीर्तना-दितिस्मर्य्यते। अच्युतानन्त गोविन्द मन्त्रमानुष्टुभंपरम्। ॐ नमः संपुटीकृत्य जपन् विषधरो हर इति ॥११॥

सर्वेश्वरादन्ये तु सर्वे ब्रह्मादयः प्रलये विनश्यन्तीति मन्तव्यम्। एको ह वै नारायण आसीदित्यादि * श्रवणात् ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे। आभूत संप्लवे प्राप्ते प्रलीने प्रकृतौ महान् ॥ एक स्तिष्ठति सर्व्वात्मा स तु नारायणः प्रभुरिति भारतात्,।

ब्रह्माशम्भूस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः।
एवमाद्या स्तथैवान्ये युक्ता वैष्णव तेजसा।

हर के धनुष को भग्न देखकर देवगण एवं ऋषिगण विष्णु को श्रेष्ठ मान लिए थे। नर सखा नारायण के साथ युद्ध करने में प्रवृत्त महादेव को श्रीनारायण जीने जव पराजित करना चाहा, तव ब्रह्मा के द्वारा प्रबोधित होकर शिव जीने श्रीनारायण की शरण ली, उन्हों ने उनकी रक्षा की, महाभारत में यह वृत्तान्त लिखा हुआ है, जव शिव आदि देव श्रेष्ट वरदाता प्रभु नारायण हरि की शरण में आये तव उन्होंने कृपा की। काल कूट से रक्षा तो श्रीहरि के नाम कीर्त्तन से ही हुई थी। अच्युतानन्त गोविन्द इस अनुष्टुभ मन्त्र को ओं नमः शब्द से सम्पुटित कर स्वयं महादेव विषधर हो गये ॥११॥

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण से अतिरिक्त ब्रह्माशिव आदि देवगण महाप्रलय विनष्ट हो जाते हैं। एक नारायण ही रहते हैं। महाभारत में लिखित है,—प्रलय के समय समस्तभूत, चराचर लोक विनष्ट होने

जगत् कार्य्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा ।
वितेजसश्च ते सर्व्वे पञ्चत्वमुपयान्ति वै । इति विष्णुधर्म्मात् १२

प्रकृति र्या मयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥
परमात्मा च सर्वेषामाधारः पुरुषः परः ।
स विष्णुनामा वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥ इति वैष्णवाच्च ।

नष्टे लोके द्विपरार्द्धावसाने, महाभूतेष्वादिभूतंगतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते, भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥
इति श्रीभागवताच्च ।

पर ब्रह्मादि महान् प्रकृति में विलीन हो जाते हैं, सबके आत्मा ही एकमात्र रह जाता है, वे ही प्रभु नारायण हैं। विष्णु धर्म में उक्त है,—ब्रह्मा, शम्भु, सूर्य्य, चन्द्रमा और शतक्रतु (इन्द्र) ये सब, और इन सब से जो अन्य हैं, वे सब वैष्णव तेज से युक्त हैं, जगत् कार्य के अवस्थान में सब उस तेज से अलग हो जाते हैं, और तेज हीन होकर सभी पञ्चत्व को प्राप्त होते हैं ॥१२॥

विष्णु पुराण में उक्त है—माया नाम से प्रसिद्ध, व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी प्रकृति और पुरुष, ये दोनों परमात्मा में लय को प्राप्त होते हैं। परमात्मा सब के आधार हैं तथा परम पुरुष हैं। उनको वेद, वेदान्तादि निखिल शास्त्र विष्णु शब्द से कहते हैं॥ यह विवरण विष्णु पुराण का है।

श्रीमद् भागवत में उक्त है—द्विपरार्द्ध काल के अन्तिम भाग में काल की गति के अनुसार समस्त लोक नष्ट होने पर पृथिवी आदि महाभूत समूह आदि भूत में प्रविष्ट होते हैं, जब महत्तत्त्व रूप व्यक्त अव्यक्त प्रकृति में लीन होते हैं, तब आप शेष नामधारी आप ही अवशेष रह जाते हैं।

तथाच हरि हेतुकोत्पत्त्यादिभिर्ब्रह्मादीनामनीशत्वं निर्बाधं सिद्धं; अतएव तद्भक्ति स्तैरनुष्ठीयते ॥१३॥

अथापि यत्पादनखावसृष्टं,
जगद्विरिञ्चोपहृताहंणाम्भः ।
शेषं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्,
को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ इति ॥

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन,
तीर्थेन मूद्ध्नंयधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् । इतिच भागवतात् ।
एकः प्रसारयेत्पादावन्यं प्रक्षालयेन्मुदा ।
परस्तु शिरसा धत्ते तेषु कोऽभ्यधिको वदेति ॥
पुराणान्तराच्च ॥

अतएव भगवान् श्रीहरि से ही सब तत्त्व की उत्पत्ति आदि होने के कारण ब्रह्मा आदि का परमेश्वर न होना निर्बाध से सिद्ध होता है, अतः उन श्रीहरि की भक्ति, वे सब देवगण करते हैं ॥१३॥

श्रीमद् भागवत के प्रथम स्कन्ध में उक्त है कि—ब्रह्मा से प्रदत्त अर्घ्य जल जिनके पदनख से निर्गत होकर जगत् को पवित्र करता है, उन मुकुन्द को छोड़कर भगवान् कौन है ? जिनके चरण प्रक्षालन जल स्वरूप पवित्र तीर्थ गङ्गा जल को शिर पर धारण कर शिव भी जगन्मङ्गल हुए हैं। अन्य पुराण में भी लिखित है, एक चरण को प्रसारित करते हैं, अन्य चरण का प्रक्षालन आनन्द से करते हैं, और तीसरे चरण को मस्तक में धारण करते हैं, अतः उन से अधिक कौन हो सकता है, कहो ?।

श्रीनारसिंह पुराण में लिखित है, आदि काल में ब्रह्मा आदि देवतागण भगवान् विष्णु की आराधना कर उनकी प्रसन्नता से निज निज पद प्राप्तकिये। महाभारत के नारायणीय में उक्तहै -देवता एवं

ब्रह्मादयः सुराः सर्व्वे बिष्णुमाराध्य ते पुरा।
स्वं स्वं पदमनुप्राप्ताः केशवस्यप्रसादतः॥

इति नारसिंहाच्च॥

ते देवाः ऋषयश्चैव नानातनुसमाश्रिताः।
भक्तया संपूजयन्त्येनं गतिञ्चैषां ददाति सः॥

इति नारायणीयाच्च॥

यत्तु,"भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुरिति"शिवाङ्ग स्पर्शाद् गाङ्गाम्भसः पावित्र्यं मन्यन्ते,तन्मदं,उक्तवाक्येभ्यः। तेन शिरसाधृतत्वात् पवित्रमिदमिति विज्ञाय पस्पृशुरिति तदर्थाच्च। हरस्य गात्रसंस्पर्शात् पवित्रत्वमुपागतेत्यत्रापि तस्य पावित्र्यं शुद्धिप्रदत्वं प्राप्तमित्यर्थः॥१४॥

यत्तु,साम्वलाभाय हरे रुद्राराधनं,पार्थ विजयाय तत्स्तवनञ्च भारते स्मर्यते,तत्तु नारदाद्याराधनवल्लीलारूपमेव बोध्यम्।

ऋषिगण विभिन्न देह धारण कर भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् को पूजन किए एवं उन से स्वीय अभीष्ट प्राप्त किए थे। कुछ लोक कहते हैं- "महादेव के अङ्ग से पतित पवित्र जल को देवता एवं ऋषियों ने स्पर्श किया था, इस से ही गङ्गा जल की पवित्रता हुई है।" ऐसा कहना ठीक नहीं है, उक्त वाक्य से प्रतीत होता है कि श्रीशिव जीने उसे मस्तक में धारण किया था, यह तो श्रीविष्णु के चरणोदक है, इस लिए उसे पवित्र मानकर स्पर्श किए थे। "शिव जी के देह स्पर्श से गङ्गा की पवित्रता हुई" इस कथन से प्रतीत होता है कि शिव जी में जो पवित्रता एवं अन्य को पवित्र करने की जो शक्ति आई है, वह उक्त गङ्गा जल स्पर्श से ही है॥१४॥

महाभारतीय बिवरण से ज्ञात होता है कि—साम्ब के निमित्त

यत्तु; द्रोणपर्व्वान्ते शतरुद्रीयार्थं रुद्रं व्याचक्षाणो व्यासस्तस्य परमकारणत्वं प्राह, तत्खलु तदन्तर्यामि परतया ज्ञेयं, परब्रह्मद्वयाभावात् तद्द्वयस्यानिष्टत्वाच्च ॥१५

तदित्थं हरेः पारतम्ये सिद्धे केषुचित्पुराणेषु विध्यादीनां पारतम्य निशम्यं न भ्रमितव्यं। तेषां राजसतामसत्वेन हेयत्वात् ॥ यदुक्तं मात्स्येः—

संकीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्विकास्तथा।
कल्पाश्चतुर्व्विधाः प्रोक्ता ब्रह्मणो दिवसा हि ते॥
यस्मिन् कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।
यस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्तत्कल्पे विधीयते॥
अग्नेः शिवस्य महात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥

श्रीहरि ने रुद्र की आराधना की, अर्जुन की विजय प्राप्ति के लिए स्तव किया, इसे तो नारदादि की आराधना के समान लीला ही जाननी होगी। महाभारत के द्रोण पर्व के अन्त में व्यास देव ने शतरुद्रीस्तव में उनका परम कारणत्व व्यक्त किया है, सो रुद्र के अन्तर्यामी के सम्बन्ध में जानना होगा, कारण परम ब्रह्म एक ही हैं, दो नहीं होतेहैं, उनको दो स्वीकार करने से महा अनर्थ होगा।१५

श्रीहरि की परतमता सिद्ध होने पर अपर पुराणों के ब्रह्मा आदि का पारतम्य वृतान्त से सन्दिग्ध होना उचित नहीं है, कारण उक्त पुराण राजस तामसात्मक हैं। मत्स्य पुराण में लिखा है— सङ्कीर्ण, राजस, तामस, सात्त्विक भेद से पुराण समूह चार प्रकार होते हैं, कल्पभेद ही इसका कारण है, ब्रह्मा के एक दिन कल्प होता है, पूर्व काल में जिस कल्प में ब्रह्मा जीने जिस पुराण को कहा था, उसका माहात्म्य उस उस कल्प में विहित है, राजस में ब्रह्मा जीकी

संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाञ्च निगद्यते ।
सात्विकेषु च कल्पेषुमाहात्म्यमधिकं हरेः ॥
तेष्वेव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परांगतिमिति ॥१६॥

कौर्म्मेच—असंख्यातास्तथाकल्पा ब्रह्माविष्णुशिवात्मका ।
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ॥
सात्विकेषु तु कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
तामसेषु शिवस्योक्तं राजसेषु प्रजापते रिति ॥
वेद विरोधिस्मृतीनां हेयत्वं मनुराह—
या वेद वाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृता इति ॥

तदेवं सात्त्विकानामेव पुराणादीनां प्रमाजनकत्वादुपादेयत्वं तदन्येषान्तु विपर्यासकरत्वादेवहेयत्वं सुव्यक्तमिति न तै र्भ्रमितव्यं सुधियेति ॥१७॥

तामस में अग्नि तथा शिवजीका सङ्कीर्ण में सरस्वतीका, सात्त्विक में श्रीहरि का सर्वाधिक माहात्म्य वर्णित है। सात्त्विक कल्पों में ही योगसिद्ध पुरुषगण परम गति को प्राप्त करते हैं ॥१६॥

कूर्म पुराण में लिखित है कालज्ञ मुनिगण पुराणों में ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक कल्पों को असंख्य कहे हैं। सात्त्विक कल्प में श्रीहरिका ही अधिक माहात्म्य है। तामस मे शिव जीका राजस में प्रजापतिका माहात्म्य है, मनुने वेद विरुद्ध स्मृतियों को अनुपादेय कहा है, जो भी स्मृति वेद विरुद्ध है, अथवा कुदृष्टि सम्पन्न है, वे सब निष्फल हैं, परलोक में भी वे सव तमो निष्ठा प्रदान करती है। इस प्रकार सात्त्विक पुराणों का प्रामाण्य सिद्ध होने से उस का उपादेयत्व है, एतद्व्यतीत अपर पुराण समूह भ्रमोत्पादक होने से हेय हैं। अतः

तस्य हरेस्तिस्रः शक्तयः सन्ति पराख्या, क्षेत्रज्ञाख्या, मायाख्या चेति।

" परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते,
स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारबंध स्थिति मोक्षहेतु" रिति श्रुतेः।
विष्णुशक्तिः पराप्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्याकर्म्म संज्ञान्या तृतीयाशक्तिरिष्यते ॥
इति श्रीविष्णुपुराणाच्च ॥१८॥

स च पराख्यशक्तिमद्रूपेण जगन्निमित्तं, क्षेत्रज्ञादि शक्तिमद्रूपेण तु तदुपादानञ्च भवति, तदात्मानं स्वयम-कुरुतेत्यादि श्रवणात् ॥१९॥

स च देहदेहि भेदशून्यो हरिरात्ममूर्त्तिर्बोध्यः
सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरं।

विद्वानों को भ्रम में पड़ना ठीक नहीं है ॥१७॥

उन हरि की तीन शक्ति हैं, पराशक्ति क्षेत्रज्ञाशक्ति, मायारूपा शक्ति, श्रुति में उक्त है—भगवान् की स्वाभाविकी शक्ति ज्ञान, बल क्रिया नाम से अनेक प्रकार हैं; वे प्रधाम प्रकृति, क्षेत्रज्ञ, जीव, एवं गुणों के ईश्वर हैं। विष्णु पुराण में लिखित है, भगवान् की एक पराशक्ति है, दूसरी क्षेत्रज्ञ शक्ति, तीसरी अविद्या संज्ञा वाली शक्ति कही गई है ॥१८॥

पराशक्ति युक्त भगवान् जगत् के निमित्त कारण हैं, क्षेत्रज्ञादि शक्ति युक्त भगवान् जगत् के उपादान कारण होते हैं। श्रुति कहती है—वह अपने आप को स्वयं ही जगत् रूप में परिणत किया ॥१९॥

द्विभुजं मौनमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
साक्षात्प्रकृतिपुरुषयोरयमात्मागोपाल-
स्तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
अर्द्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह इति श्रुतेः ॥२०॥
तस्य गुणाश्च, ज्ञानानन्दादयोऽनन्तास्ततोनातिरिच्यन्ते, "एकधैवानुद्रष्टव्यं" "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रवणात् । तथापि विशेषबलात्तद्भेद व्यवहारो भवति ।२१
विशेषश्च भेद-प्रतिनिधिर्भेदाभावेपि तत्कार्य्यं प्रत्याययन् दृष्टः, 'सत्तासती' 'भेदोभिन्नः' 'कालः सर्व्वदास्तीत्यादौ' । तमन्तरा विशेषण विशेष्य भावादिकं न सम्भवेत् ॥२२॥

वह श्रीहरि देह देही भेद शून्य आत्म मूर्त्ति हैं, श्रुति में उक्त है—कमल के समान उनके नेत्र हैं, मेघ के तुल्य अङ्ग कान्ति, मौन मुद्रा युक्त, एवं वनमाला धारण किए हुए हैं, सबके ईश्वर हैं, एक मात्र साक्षात् गोपाल ही प्रकृति एवं पुरुष की आत्मा हैं, वे गोविन्द, सच्चिदानन्द विग्रह हैं । राम अर्द्धमात्रात्मक ब्रह्मानन्दैक विग्रह हैं ॥२०॥

उन श्रीहरि के ज्ञानानन्द आदि अनेक गुण हैं, गुण समूह श्री हरि के स्वरूप से भिन्न नहीं हैं, श्रुति कहती है, गुण समुह को स्वरूप से अभिन्न जानना, श्रीहरि में भिन्नता नहीं है, देह देही गुण गुणी भेद नहीं है । तथापि विशेष पदार्थ को मानकर भेद का व्यवहार होता है ॥२१॥

विशेष पदार्थ—भेद का प्रतिनिधि है, वह भेद नहीं है, किन्तु अभिन्न पदार्थ में भेद का निर्वाह करता है । जिस प्रकार सत्ता,-है, भेद,-भिन्न,-काल, सब समय है, इत्यादि स्थलों में प्रतीति होती है । इस प्रतीति का निर्वाह विशेष ही करता है, उसके विना

नच सत्तासतीत्यादिधीर्भ्रमः, सन् घट इत्यादिवदबाधात्। नचारोपः सिंहोमाणवको नेत्यादिवत्। सत्ता सती नेति कदाप्यव्यवहारात्। न च सत्तादेः, सत्ताद्यन्तराभावेऽपि स्वभावादेव सतीत्यादि व्यवहारः। तस्यैवेह तच्छब्देनोक्तेः तस्मान्निर्भेदेऽपि हरौ भेद प्रतिनिधिः सोऽभ्युपेयः ॥२३॥

यथोदकं दुर्गेवृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावतीति कटश्रुतेः, अत्र हि ब्रह्म धर्मानुक्त्वा तद्भेदो निषिद्धः। नहि भेद सदृशे तस्मिन्नसति; धर्म धर्मि बहुत्वे भाषितुं युक्तं। न च धर्म्मो नित्योऽनुवादः श्रुतितोऽन्येन तेषामप्राप्तेः ॥२४॥

विशेषण विशेष्य भाव भी सम्भव नहीं हैं ॥२२॥

"सत्ता है" इत्यादि बुद्धि भ्रमात्मिका नहीं है, कारण "घट है" इत्यादि के समान "सत्ता है" यह प्रतीत भी प्रमात्मिका है। "बालकसिंह है" इत्यादि के समान आरोप भी नहीं है। "सत्ता" का न' होना ऐसा व्यवहार कभी भी नहीं होता है, सत्तादि में सत्तान्तर का अभाव होने पर ही स्वभाव से ही सती है" यह व्यवहार होता है ? ऐसा कहना ठीक नहीं है, यहाँ उस स्वभाव के समान ही विशेष पदार्थ को माना गया है, इस से ही श्रीहरि में समस्त अभिन्न होने पर भी भेद प्रतिनिधि विशेष के द्वारा भेद निर्वाह होता है, अतः विशेष पदार्थ को मानना आवश्यक है ॥२३॥

कठ श्रुति भी इस प्रकार है—जिस प्रकार उन्नत स्थान पर वर्षा होने से जल पहाड़ के निम्न स्थान पर आजाता है, उस प्रकार ब्रह्मगत धर्म को जो ब्रह्म से भिन्न देखता है, वह निम्नगामी होता है। यहांपर ब्रह्म के धर्म को कहकर उसका भेद का निरास किया है। भेद के सदृश विशेष पदार्थ न होने से जहाँ अनेक धर्म होतेहैं,

निर्विशेषवादिनापि शोधितात् त्वं पदार्थाद्वाक्यार्थस्यैक्यस्य भेदो नाभिमतो भेदाभेदो वा। तथा सति तस्य मिथ्यात्वाद्यापत्तेः ॥२५॥

तत्र विशेषो न चेत्, स्वप्रकाशचिद्भानेप्यैक्यस्याभानस्तद्भानस्य भेदभ्रमाविरोधित्वेऽप्यैक्यभानस्य तद्विरोधित्वञ्चेत्यादि भेद कार्यं तस्य कथं स्यात् ? तस्मात् अवश्यमेवाभ्युपेयो विशेषः ॥२६॥*

स च वस्त्वभिन्नः, स्वनिर्वाहकश्चेति नानावस्था, तस्य तादृक्त्वं च धर्मिग्राहकप्रमाणसिद्धं बोध्यम् ॥२७॥

स च परमात्मा हरिरस्मदर्थो बोध्यः। अहमात्मागुड़ाकेशेत्यादि

वहाँ धर्म धर्मी भाव का कथन कैसे सम्भव होगा, धर्म समूह का नित्यानुवाद है, ऐसा भी कहा नहीं जा सकता; श्रुति को छोड़कर उस का बोधक अपर प्रमाण नहीं है ॥२४॥

निर्विशेषवादीगण के द्वारा शोधित त्वम्' पदार्थ से वाक्यार्थ का जो ऐक्य बोध होता है, वह भेद है, अथवा भेदाभेद है ? ऐसा मानने पर उस वाक्यार्थ में मिथ्यात्व दोष होगा ॥२५॥

यदि ब्रह्म में विशेष '' न हो तो स्वप्रकाश चैतन्य का भान होने पर भी ऐक्य का भान नहीं होगा, उसका भाव भेद भ्रम का अविरोधि होने पर भी ऐक्य भान का वह अविरोधी है, इत्यादि भेद कार्य विशेष का क्यों नहीं होगा ? अतएव ब्रह्म में विशेष मानना परम आवश्यक है ॥२६॥

वह विशेष,—वस्तु से अभिन्न है, और भेद का निर्वाहक भी स्वयं ही है, अतः उस के भेद के लिए विशेष की कल्पना करने से अनवस्था भी नहीं होगी, विशेष का भेद निर्वाहक होना धर्मिग्राहक प्रमाण से ही निश्चय होता है ।२७॥

च्वात्माहमर्थयोरभेदेन स्मरणात्। 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेत्यादि श्रुतौ' प्रधानमहदहंकारादिसृष्टेः प्रागेव तत् सत्त्व प्रत्ययात् प्राकृतत्त्वंतस्य परास्तम्। अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत्परं। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोस्म्यहमिति स्मृतौचावधृत्या च शुद्धात्मनोऽस्मदर्थत्वमुक्तं अतोऽन्तेऽपि स्थितिवाक् युज्यते ॥२८॥

अतएव प्रपन्नमायानिरासकता मुक्त प्राप्यता च तस्योक्ता मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतान्तरन्ति ते' ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदतन्तरमित्यादौ।

परमात्मा श्रीहरि अस्मद् शब्द से बोध्य हैं, अर्जुन के प्रति आपने कहा था। हे गुड़ाकेश मैं आत्मा से बोध्य हूँ। यहाँपर आत्मा एवं अहम् शब्द अर्थतः अभिन्न है,–ब्रह्म ने कामना की–मैं अनेक बनूँ। सृष्टि के पूर्व में मैं ही था, कार्य्य कारण शब्द वाच्य कोई भी पदार्थ नहीं था, सृष्टि होने के पश्चात् जो विश्व हुआ, वह भी मैं हूं; और अन्त जो कुछ अवशेष रहता है, वह भी मैं ही हूँ।" इत्यादि वचनों में शुद्ध आत्मा का बोधक ही अस्मद् शब्द है, अतएव अन्त में भी उनकी स्थिति भी युक्ति युक्त है ॥२८॥

अतएव प्रपन्न जन को माया से उद्धार आप ही करते हैं, मेरी शरण में जो आता है, वह माया से उत्तीर्ण हो जाता है, पुनर्वार वह मुझ को तत्त्वतः जानकार मेरी सेवा करता है। इत्यादि वाक्य में वर्णित अहं शब्द का अर्थ परमात्मा श्रीहरि ही हैं, उनकी ही कर्त्ता भोक्तारूप में जानना चाहिये। श्रुति का कथन इस प्रकार है–उन्हीं को विश्व का कर्त्ता तथा भोक्ता जानो," वह ही विश्वकर्त्ता विश्वात्मयोनि है। वह देव विश्व कर्मा महात्मा है, मुक्त जीव ब्रह्म के साथ काम्य विषयों का उपभोग करता है।

तस्मादहमर्थः परमात्मा विशुद्धश्च स एव कर्ता भोक्ता च बोध्यः । 'स विश्वकृद्विश्वविदादात्मयोनि' रेष देवो विश्वकर्मा महात्मा । 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सहब्रह्मणा विपश्चितेति श्रुतेः' ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।। इतिस्मृतेश्च ।

भक्त्याप्रयच्छतीत्युक्ते भक्तेच्छयैव तस्य पूर्णस्यापि बुभुक्षादयोऽभिमतः तस्य तादृशत्वञ्च 'स्वेच्छामयस्येति' ब्रह्मोक्तेः ।।२९

स च पुरुषोत्तमः क्वचिद्द्विभुजः, क्वचिच्चतुर्भुजः, क्वचिदष्टभुजश्च पठ्यते । तत्र द्विभुजो यथाऽथर्व मूर्द्धिन 'सत्पुण्डरीकनयनमित्यादि' ।

श्रीगीता में उक्त है—पत्र पुष्प फल जल जो भी वस्तु मुझ को भक्ति पूर्वक प्रदान करताहै, मैं आदर पूर्वक प्रदत्त उपहार भोजन करता हूँ । भक्ति पूर्वक प्रदत्त शब्द से ज्ञात होता है, कि परिपूर्ण-काम श्रीहरि में भी भक्त की इच्छा से बुभुक्षा का उदय होता है, अतएव ब्रह्मा जीने कहा है, आप तो सच्चिदानन्दमय विग्रह हैं, आप का उदय निजेच्छा से ही होता है, ।।२९।।

उक्त पुरुषोत्तम शास्त्रों में कहीं द्विभुज, कहीं चतुर्भुज, और अष्टभुज कहे गये हैं, द्विभुज का विवरण अथर्व शिरा: में है, सत् पुण्डरीक के समान नयन, श्रीजानकी के साथ श्याम वर्ण पीत वसन जटा धर द्विभुज कुण्डली रत्नमालाधारी धीर एवं धनुर्द्धर हैं। तैत्तिरीयक में उक्त है—दोनों हाथों की दश अङ्गुलियां, दश चरणों की अङ्गुलियां, दो ऊरु, दो बाहु और एक हृदय ये पच्चीश अंगवाले हैं । रहस्य आम्नाय में लिखा हैं—दोनों भुजाओं के द्वारा लक्ष्मी जी को धारण किये हुये हैं । तैत्तिरीयक में लिखित है-हाथ की दश

प्रकृत्या स हि श्यामः पीतवासा जटाधरः ॥
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः ॥इति॥

तैत्तिरीयके च-दशहस्तांगुलयो दशपद्याद्वा-
वूरू द्वौबाहू आत्मैव पञ्चविंशक इति ।

रहस्याम्नाये च,-पाणिभ्यां श्रियं संवहतीत्यादिना।

श्रीसात्वते च—

नादावसाने गगने देवोऽनन्तः सनातनः।
शान्तः संवित्स्वरूपस्तु भक्तानुग्रहकाम्यया ॥
अनौपम्येन वपुषाह्यमूर्तो मूर्ततां गतः।
विश्वमाप्याययन्कान्त्यापूर्णेन्द्वयुत तुल्यया ॥
वरदाभयदेनैव शंख चक्राङ्कितेन च।
त्रैलोक्यधृतिदक्षेण युक्तपाणिद्वयेन सः ॥

संकर्षण संहितायां च—

पुरुषोत्तमस्य देवस्य विशुद्धस्फटिकत्विषः।
समपादस्य तस्यैव ह्येक वक्त्रस्य संस्थितिः ॥
वरदाभयहस्तौद्वावपवृत्ताख्यकर्मणः ॥३०॥ ॥इति॥

अङ्गुलियां दस चरणों की अङ्गुलियां दो ऊरू, दो बाहु और एक हृदय वे पच्चीस अङ्ग युक्त हैं। रहस्य आम्नाय में लिखित है,-दोनों भुजाओं से श्री 'लक्ष्मी' को धारण किए हुए हैं। सात्वत तन्त्र में लिखित है, नाद अर्थात् शब्द के समाप्त होने से आकाश में शान्त तथा ज्ञान स्वरूप अनन्त देव भक्तों के प्रति अनुग्रह करने की कामना से अमूर्त्त होकर भी अलौकिक वपु धारण कर प्रकट हुए। अयुत चन्द्र के समान कान्ति के द्वारा विश्व को प्रसन्न करते हुए; वर एवं अभय देनेवाली शङ्ख चक्र से अङ्कित, तीनों लोक को धारण करने में समर्थ

चतुर्भुजो यथा विष्वक्सेन संहितायाम्—

अप्राकृततनुर्देवो नित्याकृतिधरो युवा ।
नित्यातीतो जगद्धाता नित्यैर्मुक्तैश्च सेवितः ॥
वद्धांजलिपुटैर्हृष्टै र्निर्मलैर्निरुपद्रवैः ।
चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः श्रीभूलीलाभिरन्वितः
विमलैर्भूषणै र्नित्यैर्भूषितो नित्यविग्रहैः ।
पञ्चायुधैः सेव्यमानः शंखचक्रधरो हरिः ॥इति॥

श्रीदशमे च—तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधं ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं—
पीतांवरं सान्द्रपयोदसौभगमिति ॥

श्रीगीतासु च—तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन ।
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥ इति॥

दो भुजाओं से युक्त हैं। सङ्कर्षण संहिता में उक्त है, उन विशुद्ध, स्फटिक के तुल्य कान्ति युक्त, दो पाद युक्त, एक मुख, एवं अभय मुद्रा से युक्त द्विभुज रूप में श्रीपुरुषोत्तम स्थित हैं ॥३०॥

विष्वक्सेन' संहिता में चतुर्भुज की कथा है--जिनका देह अप्राकृत है, जो नित्याकृति विशिष्ट युवा हैं, धीर हैं, नित्य सर्वातीत हैं, जगत् के धाता हैं चतुर्भुज हैं, श्यामलाङ्ग हैं, श्रीभू, लीला शक्ति से युक्त हैं, विमल आभूषणों से भूषित हैं, नित्य विग्रह हैं, पञ्चायुधों से सेवित हैं। इस प्रकार जो शंख चक्रधारी श्रीहरि हैं, भगवान् हैं, वे वद्धाञ्जलि प्रसन्न निर्मलान्तः करण, निरुपद्रव नित्य मुक्तों के द्वारा सेवित हैं।

श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में उक्त है--जिनके नयनद्वय

अष्ट भुजोयथा चतुर्थे–पीनायताष्टभुजमण्डलं मध्यलक्ष्म्या,
स्पर्द्धच्छ्रिया परिवृतो बनमालयाढ्यः ।
वर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान्,
पर्ज्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ।।इति।।

आनन्दाख्यसंहितायान्तु रूपत्रयमुक्तम्–

स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मञ्चैव चतुर्भुजं ।
परन्तुद्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्रयं यजेत् ।।३१।।

एतानि रूपाणि भगवति वैदूर्यमणिवद्युगपन्नित्याऽविभूतानि विभान्ति। तेषु चारुत्वाधिक्यात् कृत्स्नगुणव्यक्तेश्च द्विभुजस्य परत्वमुक्तं, नतु वस्तवन्यत्वमस्ति "नेह नानास्ति किञ्चने" त्यादिवचनात् ।

कमल के समान हैं, शंख गदा आदि आयुधों से युक्त भुज चतुष्टय हैं, वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न है, गले में कौस्तुभ मणि शोभित है, जो पीत वसन धारी हैं, एवं जिनका वर्ण घनश्याम है, वसुदेव ने ऐसे अद्भुत बालक को देखा। श्रीगीता में भी उक्त है--हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्त्ते ! आप पूर्वरूप में अवस्थित हो जांय। अष्टभुज का विवरण श्रीमद् भागवत के चतुर्थस्कन्ध में है-विस्तृत तथा स्थूल अष्ट भुजाओं के मध्य में लक्ष्मी देवी हैं, एवं लक्ष्मी से भी स्पर्द्धा करने वाली वनमाला वक्षस्थल में शोभित है, शरणागत वर्हिष्मत् के पुत्रों के प्रति कृपा दृष्टि एवं मेघगम्भीर वाणी से बोले।

आनन्दाख्यसंहिता में भगवान् के रूपत्रय का वर्णन है, अष्ट भुज रूप को स्थूल कहा गया है, चतुर्भुज रूप सूक्ष्म है, और इस सब से भी उत्कृष्ट रूप द्विभुज है, अतः इन तीनों का ही यजन करें।३१

भगवान् के ये रूप समूह वैदुर्य्य मणि के समान युगपत् आविर्भूत होते रहते हैं इस रूपों में द्विभुज रूप श्रेष्ठ है, कारण उन में सर्वाधिक

यत्तु मन्यन्ते परमव्योम्नि नित्योदितश्च चतुर्भुजं रूपं परं, द्विभुजादि रूपन्तु शान्तोदितमपरमिति, तत्खल्वविचारिताभिधानमेव।

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः
हानोपादानरहिता नैवप्रकृतिजाः क्वचित् ।
परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः,
सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः ॥

इति महावराहोक्तिव्याकोपात् ।

परन्तु द्विभुजमितिकण्ठोक्तिविरोधान्मायिकसिद्धान्तस्पर्शापत्तेश्च * ॥ भेदहीनेष्वेव तेषु रूपेष्वंशित्वांशत्वादिकं शक्ति

सौन्दर्य्य एवं समस्त गुणों का सम्पूर्ण प्रकाश है। किन्तु वस्तुगत कुछ भी भेद नहीं है, श्रुति कहती है, ब्रह्म में नाना भेद नहीं है, यदि कोई कहे कि चतुर्भुज रूप वैकुण्ठ में नित्य प्रकाशित होने से वह रूप ही सर्वश्रेष्ठ है, द्विभुज रूप तो अंश से प्रकाशित होता है, वह भी जगत् में अतः यह रूप कनिष्ठ है ? यह कथन अविचार पूर्वक ही है, कारण रूपों में तत्त्वगत ज्येष्ठ कनिष्ठ भेद मानने से महावाराह पुराण की उक्ति के साथ स्पष्ट विरोध होगा। उन परमात्मा के सभीदेह नित्य तथा शाश्वत हैं, नश्वर नहीं है, एवं प्रकृति से उत्पन्न नहीं है, परमानन्दमय हैं सब प्रकार से ज्ञान स्वरूप हैं, समस्त देह समस्त गुणों से पूर्ण एवं सर्व दोष विवर्जित हैं। "द्विभुज श्रेष्ठ है" परन्तु द्विभुजम्" कथन के साथ पूर्व वाक्य का विरोध होगा, ऐसा मानने से मायिक सिद्धान्त होने की सम्भावना होगी। यद्यपि उन में कुछ भी भेद नहीं है, तथापि अंश अंशी भाव होता है, इसका कारण है—जहाँ जिस प्रकार शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, उसकी दृष्टि से कहते हैं, परिपूर्ण शक्ति का जिस में आविर्भाव होता है, वह

व्यक्तितारतम्यसव्यपेक्ष्यमाहुः । यदुक्तं वृद्धैः, शक्तेर्व्यक्ति स्तथाऽव्यक्ति स्तारतमस्य कारणमिति ॥३२॥

स च पुरुषोत्तमः श्रीपति र्बोध्यः,"श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या विति यजुः श्रुतेः" कमलापतयेनमः, रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमोनमः. रमाधवाय रामायेत्यथर्वण श्रुतिश्च । पूर्वत्र श्रीर्गीदेवी, लक्ष्मीस्तु रमादेवीति व्याख्यातारः ॥

ननु "नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादि" श्रवणान्न ब्रह्मणि-कश्चिल्लक्ष्म्यादिरूपो विशेषः शक्योमन्तुं, किन्त्वङ्गी कृतश्चायं विशुद्धसत्त्वमूर्तिकं तत्तादृश्यैवलक्ष्म्या गिरा च युज्येते, इति चेद्भ्रान्तमेतत् वह्लेरु ष्णतेव स्वरूपाभिन्नापराख्याशक्ति

स्वयं, पूर्ण भगवान् होते हैं। इस प्रकार शक्ति की अभिव्यक्ति तथा अनभिव्यक्ति ही अंश अंशी भाव के प्रति कारण है, ॥३२॥

उन पुरुषोत्तम श्री श्रीपति हैं, यजुर्वेद शिखा में लिखा है, आप की श्रीएवं लक्ष्मी' दो पत्नी हैं। अथर्व श्रुति में उक्तहै, कमला पति को नमस्कार, रमा के मानस हंस गोविन्द को वारम्वार नमस्कार करू । रमापति को नमस्कार, राम को नमस्कार। पूर्वोक्त श्रीशब्द से सरस्वती को एवं लक्ष्मी शब्द से रमादेवी को जानना होगा, यह मत व्याख्याकार का है।

यहाँपर संशय यह है कि-ब्रह्म में लक्ष्मी नहीं है, इस श्रुति के संवाद से ब्रह्म में लक्ष्मी आदि रूपविशेष नहीं माना जा सकता, किन्तु जव वह ब्रह्म माया को अङ्गीकार मायाके विशुद्ध सत्त्व से विशुद्ध सत्त्व मूर्त्ति होते हैं तभी उस प्रकार लक्ष्मी सरस्वती से युक्त हो सकते हैं, इस प्रकार कथन सम्पूर्ण भ्रमात्मक है, कारण अग्नि की उष्णता की भाँति ब्रह्म में अभिन्न रूप से स्वरूप शक्ति रहती है, यह पराशक्ति है, श्रुति कहती है, ब्रह्म की पराशक्ति विविध प्रकार की

ब्रह्मण्यस्ति "परास्येत्यादि श्रुतेः" सैव तस्य लक्ष्मी गीर्देवी चेति स्वीकार्यम् । प्रोच्यते परमेशोयो यः प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहीनामिति श्रीवैष्णवात् ।

' अपरन्त्वक्षरं या सा प्रकृति जंड़ रूपिणी ।
श्रीः पराप्रकृतिः प्रोक्ता चेतना विष्णुसंश्रया' ॥

॥ इति स्कान्दाच्च ॥

सरस्वतीं नमस्यामि चेतनां हृदि संस्थिताम् ।
केशवस्य प्रियां देवीं शुक्लां क्षेमप्रदां नित्यामिति
स्कान्देगीस्तोत्राच्च । इत्यश्च पूर्वपक्षो निरस्तः ॥३३॥

ननु 'नेह नानास्ति किञ्चनेति' निर्विशेषत्वमुक्तं, मैवं । इह यदास्ति तन्नाना न किन्तु स्वरूपानुबन्ध्यैवेति विशेषप्रत्ययात् श्रीश्च ते लक्ष्मीश्चेत्यादिप्रामाण्याच्च । लक्ष्म्या एव रूपान्तरं गीर्देवीति मन्तव्यं । संध्या रात्रिः प्रभाभूति मेधा श्रद्धा

है, उस शक्ति की ही लक्ष्मी सरस्वती मानना चाहिये । श्रीविष्णु पुराण में उक्त है—श्रीविष्णु हमारे प्रति प्रसन्न हों, जो भेद रहित होकर भी उपचार से लक्ष्मीपति कहे जाते हैं । एवं समस्त देह धारिओं के आत्मा हैं । स्कन्ध पुराण में लिखित है—अपर जो अक्षर है, वह जड़ रूपिणी प्रकृति है, परा प्रकृति ही श्रीरूपिणी है, जो चेतना रूपा होकर श्रीविष्णवाश्रित होकर रहती है, स्कन्ध पुराण के सरस्वती स्तोत्र में लिखित है—समस्त जीवोंके हृदय में स्थित चेतना स्वरूपा शुक्लवर्णा, नित्या, मोक्षदायिनी, केशव प्रिया सरस्वती देवी को प्रणाम करता हूँ जो नित्य क्षेम प्रदा है । इस प्रमाणों से पूर्वोक्त माया वादीका पूर्वपक्ष निरस्त हुआ ॥३३॥

यदि कहा जाय कि—" नेह नानास्ति किञ्चनेति" श्रुति से

सरस्वतीति श्रीवैष्णवे तस्या विशेषणात्।

किञ्च— ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रात्वयि नो गुणवर्जित इति॥

तत्रैव त्रिवृत्परा कीर्त्यते। तत्र संवित्प्रधाना वृत्तिः गीर्देवी। ह्लाद प्रधाना तु लक्ष्मीः, अनयोः पूर्वानुत्तरानुगुणं बोध्या संविदः सुखानुधावनप्रसिद्धेः॥३४॥

लक्ष्म्या भगवदभेदादेव तद्वत्तस्या व्याप्तिश्च तत्रैव स्मर्यते—

नित्यैव सा जगन्माता, विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णु, स्तथैवेयं द्विजोत्तमेति॥

निर्विशेष का बोध होता है, यह कहना ठीक नहीं है; उस मन्त्र अर्थ इस प्रकार है—उस ब्रह्म में जो कुछ भी है, वह उन से पृथक् नहीं है, किन्तु स्वरूपानुबन्धी ही है, इस से ही विशेष प्रत्यय होता है, और श्री, लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी हैं" कथन भी सार्थक होता है, लक्ष्मी का रूपान्तर ही सरस्वती है, विष्णु पुराण में उक्त है—सन्ध्या रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती उस लक्ष्मी के विशेषण है उस में और भी कहा गया है—हे सर्वाश्रय भगवन्! आप में एक पराशक्ति ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित रूपसे हैं। प्राकृत सत्त्व रजः तमसात्मक आनन्दादि आप में नहीं रहते हैं, ये सब जीव में होते हैं, आप मायिक गुणों से वर्जित हैं। उक्त त्रिविध पराशक्ति में सम्वित् प्रधाना परा शक्ति सरस्वती है, आह्लाद प्रधाना लक्ष्मी है, इन में सम्वित् प्रधाना सरस्वती ह्लाद प्रधाना लक्ष्मी का अनुसरण करती है, कारण सम्वित् 'ज्ञान' सुख का ही अनुगमन करता है॥३४॥

श्रीहरि के साथ श्रीलक्ष्मीं का अभेद होने से ही उनके समान ही लक्ष्मी व्यापक हैं, विष्णु पुराण में लिखित है—हे द्विजोत्तम! जिस प्रकार विष्णु व्यापक है, उस प्रकार लक्ष्मी भी व्यापक हैं, वह नित्य जगन्माता लक्ष्मी श्रीविष्णु की अनपायिनी शक्ति है। लक्ष्मी को

ततोभेदे तु व्याप्तिरियमपसिद्धान्तोघटते । इत्थञ्चास्या जीव-कोटित्वं निरस्तं । एषा लक्ष्मीर्हरिवदनन्तगुणा तत्रैवोक्ता । न ते वर्णयितुंशक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः । प्रसीद देवि । पद्माक्षि ! मां स्वांस्त्याक्षीः कदाचनेति ॥३५॥

ते च गुणा मुक्तिदातृत्वहरिवशीकारित्वादयः कतिचित्तत्रैव पठिताः ।

आत्माविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ।
कात्वन्या त्वामृते देवि सर्वं यज्ञमयं वपुः ॥
अध्यास्ते देव देवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ।
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ॥
विनष्ट प्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ।
दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्यधनादिकम् ॥
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणात् नृणाम् ।
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखं ॥

विष्णु से भिन्न मानने पर व्यापकता को लेकर अपसिद्धान्त होगा, अतएव लक्ष्मी कभी जीव कोटि की नहीं होती हैं। श्रीहरि के समान ही अनन्त गुण सम्पन्ना लक्ष्मी है। विष्णु पुराण में उक्त है-हे देवि पद्माक्षि ! आप के गुण समूह का वर्णन स्वयं विधाता भी नहीं कर सकते हैं। हे देवि ! निज जन मुझ को कभी परित्याग न करो ॥२५॥

मुक्ति प्रदत्व श्रीहरि वशीकारित्व प्रभृति जो गुण लक्ष्मी में है, उसका वर्णन श्रीविष्णु पुराण में ही है। हे देवि आप आत्मविद्या स्वरूपिणी हो, विमुक्ति फल दायिनी हो आप को छोड़कर और किस

देवित्वद् दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्ल्लभम् ।
सत्वेन सत्य शौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ॥
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ।
त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यै रखिलैर्गुणैः ॥
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ।
स श्लाघ्यः सगुणी धन्य सकुलीनः स बुद्धिमान् ॥
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ।
सद्यौ वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकलागुणाः ॥
परांमुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥

इत्यादिना हरिवद्बहुरूपेयं सर्वत्र तदानुरूप्येण तमनुयातीति च तत्रैवोक्तंदेवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी, विष्णो

का उन यज्ञमयवपु; योगिगण सेव्य, गदाधर, श्रीविष्णु के सर्वाङ्ग में अधिकार है, हे देवि जब आपने विश्व को परित्याग किया तब ही यह नष्ट हो गया था, अब आपके द्वारा यह सम्पन्न हुआहै। हे महाभागे ! आप के दर्शन से ही मनुष्य दारा, पुत्र, आगार, सुहृद् धन धान्यादि द्वारा पूर्ण होते हैं, हे देवि ! जिस के प्रति आपकी दृष्टि पड़ती है, वह नीरोग शरीर, ऐश्वर्य्य, शत्रुनाश, सुख आदि से सम्पन्न हो जाता है। हे अमले ! आप जिस का त्याग देती हैं, उसे सत्य, शौच, शील आदि सबही गुण परित्याग कर देते हैं, और आपकी कृपादृष्टि हो तो गुणहीन मनुष्य भी शीलादि समस्त गुणों से तथा कुलैश्वर्य्य से सम्पन्न हो जाता है। हे देवि ! आप की दृष्टि जिस पर पड़ती है, वह प्रशंसित होता है वही गुणी, कुलीन, बुद्धिमान, शूर, पराक्रमी है, हे जगन्मातः ! विष्णुवल्लभे ! आप जिस के प्रति पराङ्मुख हो जाती हैं, उसके शीलादि समस्त गुण दुर्गुण में परिणत हो जाते हैं।

देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुमिति ॥३६॥

तेषु सर्वेषु लक्ष्मीरूपेषु राधायाः स्वयं लक्ष्मीत्वं मन्तव्यम् । सर्वेषु भगवद्रूपेषु कृष्णस्य स्वयं भगवत्त्ववत् । पुरुषबोधिन्यामथर्वोपनिषदि—"गोकुलाख्ये माथुरमण्डले" इत्युपक्रम्य "द्वेपार्श्वे चन्द्रावली राधिकाचेत्युक्त्वा यस्या अंशे लक्ष्मीदुर्गादिका शक्तिरित्यभिधानात् ।" निरस्त साम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः 'इति भागवते श्री शुकोक्तेः' । वृहद्गौतमीये च तन्मंत्रकथने—

"देवि कृष्णमयी प्रोक्ता, राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी-परे" ॥

ये लक्ष्मी श्रीहरि के समान अनेकरूपिणी हैं, विष्णु के अवतार के अनुरूप रूप धारण कर आप विष्णु के अनुगमन करती रहती हैं। विष्णुपुराण में लिखित है,—विष्णु के देवत्व में देवदेह, मनुष्यत्व में मनुष्यदेह लक्ष्मी धारण करती है ॥३६॥

उन समस्त लक्ष्मी रूपों में श्रीराधा ही स्वयं लक्ष्मी स्वरूपा हैं, जिस प्रकार समस्त भगवद्रूपों में श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, उस प्रकार राधा को भी जानना होगा। अथर्ववेदीय पुरुषबोधिनी में उक्त है—"गोकुल नामक मथुरा मण्डल में" इस प्रकार आरम्भ कर उभय पार्श्व में चन्द्रावली राधिका है। यह कह कर जिस के अंश से लक्ष्मी-दुर्गादिका शक्ति है, ऐसा कहा है। श्रीमद्भागवत में उक्त है—जिस के समान या श्रेष्ठ कोई नहीं है, ऐसी आराधिका राधिका के सहित गोकुल नामक् निज धाम में विलसित भगवान् को प्रणाम है।

वृहद्गौतमीय में उक्त है—देवी राधिका कृष्णमयी, परदेवता, सर्वलक्ष्मीमयी, सर्व कान्तिस्वरूपा, सर्व सम्मोहिनी एवं परा है।

त्युक्तेश्च "एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति ।" अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किलेति च श्रीभागवतात् ॥३७॥

इति वेदान्तस्यमन्तके प्रमेयनिर्णयो द्वितीयः प्रमेयः ॥

❀ तृतीयः किरणः ❀

अथ जीवो निरूप्यते ।

तल्लक्षणं चाणु चैतन्यमाहुः श्रुतिश्च-एषोऽणुरात्मा,
चेतसावेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश ।
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते ॥

श्रीमद्भागवत में उक्त है,—ये सब अवतार पुरुष के अंश एवं कला हैं, और कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। देवकी (वसुदेव) के अष्टम गर्भ में स्वयं श्रीहरि ही आविर्भूत हुए थे ॥३७॥

वेदान्तस्यमन्तक नामक ग्रन्थ में सर्वेश्वरतत्त्व निर्णय नामक द्वितीय किरण की तत्त्व प्रकाशिका विवृति समाप्त ॥२॥

❀ तृतीयः किरणः ❀

अनन्तर जीव का निरूपण करते हैं—उस का लक्षण—उसे अणुचैतन्य कहते हैं। श्रुति इस प्रकार है,—यह अणु आत्मा है, इसे चित्त से जाना जाता है, जिस में प्राणवायु पञ्च प्रकार से प्रविष्ट होता है। केश के अग्रभाग को शत भाग से विभक्त करके उस अंश फिर से शतभाग करने पर जो अंश बनता है, उतना अंश ही जीवात्मा है।

मित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेकोबहुनां यो विदधाति कामान् ।
तं पीठस्थं ये तु यजन्ति विप्रा-
स्तेषांशान्तिः शाश्वती नेतरेषामिति श्रवणात् ॥१॥

एतेन भ्रान्तं ब्रह्मैवैको जीव, स्तदन्ये सर्वे जीवादयस्तदविद्यया कल्पिताः "स्वप्नद्रष्टेव रथादय" इत्येक जीववादो निरस्तः। नित्यचेतनतया बहूनां जीवानां श्रुतत्वात् ॥२॥

स च जीवो नित्यज्ञानगुणकः, अविनाशी वा अरे अयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मेति, न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यत इति च श्रुतेः ।

अणोरपि तस्य ज्ञानगुणेन सर्वाङ्गेषु व्याप्तिः । 'गुणाद्वालोकवदिति' सूत्रात् । यथाप्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।

वह संख्या में अनन्त है ।

समस्त नित्य पदार्थों का नित्यत्व प्रदानकारी, समस्त चेतन पदार्थों को चैतन्य प्रदानकारी एक तत्त्वपदार्थ भगवान् हैं, आप अनेकों का मनोरथ पूर्ण करते हैं, उन पीठस्थ भगवान् का जो विप्र यजन करता है, उसे शाश्वती शान्ति मिलती है, अपर लोकों को नहीं मिलती है ॥१॥

इससे भ्रान्त ब्रह्म ही जीव होता है, वह एक जीव है, और सब जीव उस जीव की अविद्या से कल्पित होते हैं, जिस प्रकार स्वप्न में दृष्ट रथ प्रभृति होते हैं, इस जीववाद का निरास हुआ । कारण नित्य चेतन रूप से अनेक जीवों का वर्णन श्रुति में ही है ॥२॥

वह जीव नित्य ज्ञान-गुण सम्पन्न है। वृहदारण्यक श्रुति में वर्णित है,—यह आत्मा अविनाशी है, एवं उच्छेद धर्म रहित है। विज्ञाता के विज्ञान का विलोप नहीं होता है।

क्षेत्रक्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतेति भगवद्-वाक्याच्च ॥३॥

अस्मदर्थश्च जीवात्मा बोध्यो, विलीनाहङ्कारायां सुषुप्तावहमिति तत्स्वरूपविमर्शात् । तथा च श्रुतिः । सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति ॥४॥

देहादिविलक्षणश्च षड्भावविकारशुन्यश्च सः । नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि, देवाह्यसुर्वायुजलं हुताशः । मनोऽनुमात्रं धिषणा च सत्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यमिति ।

नात्माजजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ,
न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ।

जीव अणु होने पर भी ज्ञान गुण के कारण समस्त अङ्गों में व्याप्त है । ब्रह्मसूत्र में उक्त है,—गुण के कारण प्रकाश के समान है । श्रीभगवद् गीता में इस का सुस्पष्ट विवरण है । जिस प्रकार एक ही सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश करता रहता है, उस प्रकार हे भारत ! क्षेत्री—जीव, सम्पूर्ण क्षेत्र शरीर को प्रकाशित करता रहता है ॥३॥

जीवात्मा,—अस्मद् शब्द का वाच्य है, कारण—सुषुप्ति अवस्था में अहङ्कार विलीन होने पर भी "अहं" मैं हूँ, इस प्रकार जीव अपना स्वरूप का अनुभव करता है । श्रुति इस प्रकार है,—मैं सुखपूर्वक सोया हूँ, "मुझे कुछ भी पता नहीं है" ॥४॥

आत्मा देहादि से विलक्षण है, एवं षड् भावविकार से रहित है, श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में लिखित है,—आत्मा, प्राकृत देह एवं इन्द्रिय नहीं है । देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि भी नहीं है, सूक्ष्म परिमाण मन स्वरूप भी नहीं है, प्रकृति अहङ्कार भी नहीं है, आकाश, पृथिवी भी नहीं है, एवं किसी भी पदार्थ के सहित उस की समता भी नहीं है । वह उत्पन्न भी नहीं होता और इस की

सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं,

प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सदिति चैकादशात् ॥५॥

परमात्मांशश्च सः। ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन इति भगवद्वाक्यात् ॥६॥

कर्त्ता भोक्ता च सः विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि चेति। सोऽश्नुते सर्वान् कामानिति श्रवणात्। यत्तु प्रकृतिः कर्त्री, भोक्तातु जीव इत्याहुस्तन्मन्दं, कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरेकनिष्ठत्वात्। यदाह बनपर्वणि सोमकं यमः। नान्यः कर्त्तुः फलं राजन्नुपभुंक्ते कदाचनेति ॥७॥

ननु कर्तृत्वे दुःखसम्बन्धात् न तत्र श्रुतेस्तात्पर्य्यमिति

मृत्यु भी नहीं है। न वृद्धि होती है, न ह्रास, शरीर की बाल, युवा, वार्द्धक्य तीन अवस्थाओं का द्रष्टा है। सब देहों में अणु रूप से वर्त्तमान है, तथा उपलब्धिमात्र अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, जिस प्रकार एक ज्ञान इन्द्रिय की शक्ति से विकल्पित होता है, प्राण किन्तु अविकारी रहता है, उस प्रकार आत्मा भी अविकारी रहता है ॥५॥

वह जीवात्मा परमात्मा का अंशस्वरूप है। श्रीगीता में भगवान् ने कहा है,—सनातन जीव, मेरा ही अंश है ॥६॥

वह कर्त्ता, भोक्ता है, वह यज्ञ को विस्तार करता है, कर्म को भी विस्तार करता है, समस्त कामनाओं को भोगता रहता है। सांख्यवादी के मत में,—"प्रकृति—कर्त्री है, जीव भोक्ता है" इस प्रकार सिद्धान्त ठीक नहीं है। एक कर्त्ता, अपर भोक्ता नहीं हो सकता है, कर्त्तृत्व भोक्तृत्व एकनिष्ठ ही होता है। महाभारत के बन पर्व में यम, सोमक को कहते हैं,—हे राजन्! कर्त्ता का फल अपर कोई व्यक्ति कभी भोग नहीं करता है ॥७॥

कर्त्तृत्व जहाँ रहता है, वहाँ दुःख अवश्य ही रहेगा।

चेन्मैवमेतत् । तथासति दर्शादिष्वप्यतात्पर्य्यापत्तेः । लीलोच्छासादेरकरण एव तत्सम्बन्धवीक्षणाच्चेति ॥८॥

न च निष्क्रियत्वश्रुत्या कर्तृत्वं जीवस्य बाध्यते । अस्तिभाति विदिधात्वर्थानामात्मनि सत्वेन निष्क्रियत्वासिद्धेः । धात्वर्थो हि क्रियेत्याहुः । न च निर्विकारत्वश्रुत्या तस्य तद्बाध्यते । सत्ताभानज्ञानगुणाश्रयत्वेऽपि द्रव्यान्तरतापत्तिरूपस्य विकारस्य तत्राप्रसङ्गात् ॥ यथा संयोगाश्रयत्वेऽपि आकाशे न कोऽपि विकारस्तथा स्थूलक्रियाश्रयत्वे स

श्रुति का तात्पर्य्य वैसा नहीं है, श्रुति का तात्पर्य्य सुख में ही है ? इस प्रकार मत कहो, ऐसा कहने पर दर्श पौर्णमासादि याग में प्रवृत्ति के लिए वेद की सम्मति नहीं होगी । इच्छापूर्वक जो व्यक्ति प्राणायाम करता है, उस से भी दुःख होता ही है । उस में दुःख का सम्बन्ध होने से वह उस का कर्त्ता नहीं बन सकता है ॥८॥

जब श्रुति निष्क्रिय होने के लिए कहती है, तो जीव का कर्त्तृत्व निषेध ही हो जाता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। कारण—अस्ति, भाति, वत्ति प्रभृति धातु का सत्ता, प्रकाश, ज्ञानादि अर्थ आत्मा में विद्यमान होने से आत्मा को निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता है। धातु का अर्थ ही क्रिया है। कर्त्ता तो विकारी होता ही है, और विकारी नश्वर होता है, अतः श्रुति कर्त्ता को निष्क्रिय कहती है, कारण आत्मा नित्य है, निष्क्रियत्व के विना नित्यत्व होना सम्भव नहीं है ! ऐसा प्रसङ्ग कर्त्ता में नहीं होगा। सत्ता भान ज्ञान गुणों का आश्रय कर्त्ता होने पर भी वह विकारी नहीं होगा, कारण उस आत्मारूप कर्त्ता में अपर द्रव्य की भाँति द्रव्यान्तरतापत्तिरूप विकार की सम्भावना ही नहीं है। जिस प्रकार संयोगाश्रय आकाश होने पर भी उसमें कोई बिकार नहीं होता है, उस प्रकार स्थूल क्रियाश्रय आत्मा होने पर भी आत्मा में विकार की सम्भावना नहीं है, सुषुप्ति

नात्मनीति द्रष्टव्यं। सुषुप्तावपि सुखज्ञानसाक्षित्वरूपं कर्तृत्वमस्तीति पारमार्थिकं जीवस्य तत् ॥९॥

तच्चेश्वरायात्तं बोध्यम्। एष एव साधुकर्म्मकारयतीत्यादि श्रुतेः। परात्तु तच्छ्रुतेरिति सूत्राच्च ॥१०॥

स च जीवो भगवद्दासो मन्तव्यः। "दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचनेति" पाद्मात् ॥

ननु सर्वेषां जीवानां तद्दासत्वे स्वरूपसिद्धे निर्विशेषे च सति उपदेशादेर्वैयर्थ्यमिति चेन्न,तदभिव्यञ्जकत्वेन तस्य सार्थक्यात् न हि मथनेन विना दध्निसर्पिररणौ च वह्निराविर्भवेदिति ॥११॥

स च जीवो गुरूपसत्त्या तदवाप्तया हरिभक्त्या च पुरुषार्थो

अवस्था में सुख का अनुभवी आत्मा ही है, वह उस का साक्षी है। अतएव उसमें कर्त्तृत्व पारमार्थिक ही है ॥९॥

जीव का यह कर्त्तृत्व ईश्वराधीन ही है। श्रुति कहती है,— ईश्वर ही जीव को उत्तम कर्म करता है, "परात्तु तच्छ्रुतेः" ब्रह्मसूत्र के सूत्र में उक्त है,—जीव का कर्त्तापन परपुरुष से ही है ॥१०॥

वह जीव भगवद् दासस्वरूप है। पद्मपुराण में लिखित है,— जीव श्रीहरि का ही दास है; कभी भी किसी का नहीं है।

यदि समस्त जीव स्वाभाविक ही भगवद् दास होते हैं तो निर्विशेष होने से शास्त्र उपदेश की आवश्यकता ही नहीं रहेगी ? ऐसा कहना ठीक नहीं है। उपदेशक शास्त्र उस नित्य दासपन को जाग्रत कर देता है, उस के विना श्रीहरि दासत्व का बोध किसी भी जीव को नहीं होता है। अत: शास्त्र उपदेश की सार्थकता है। मन्थन के विना दधि से नवनीत एवं काष्ठ से वह्नि नहीं निकलती है ॥११॥

वह जीव गुरु की शरणागति से एवं उनकी दी हुई हरिभक्ति

भवति ॥ यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इति ॥ आचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपत्स्ये इति। श्रद्धाभक्तिज्ञानयोगादवैतीति। ततस्तुतं पश्यते निष्कलं ध्यायमान इति च श्रुतेः ॥

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

तत्र भागवतान् धर्म्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः।

अमाययानुवृत्या यै स्तुष्येदात्मात्मदो हरिरिति स्मृतेश्च ॥१२

सा च भक्तिः शास्त्रज्ञानपूर्विकैवानुष्ठेया। तमेव धीरो विज्ञाय

से पुरुषार्थी होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में लिखित है,—जिस की पराभक्ति श्रीभगवान् में है, एवं जैसी भगवान् में है, वैसी भक्ति गुरु में है। महात्मा के कहे हुए वेदों के सिद्धान्तसमूह भी उसकी स्फूर्ति होती है। आचार्यरूप श्रीगुरुचरणाश्रयी व्यक्ति का वेदार्थ ज्ञान होता है। प्रारब्ध कर्म नाश के अनन्तर वह मुक्त होता है। श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान, योगादि से परतत्त्व को जाना जाता है। कैवल्योपनिषद् में लिखित है,—ध्यान परायण व्यक्ति ही उस अखण्ड पूर्णपुरुष को देखा है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में वर्णित है,—उत्तम श्रेय जिज्ञासु व्यक्ति वेदार्थ में निष्णात भगवत्तत्त्वानुभवी, विषय वितृष्ण, भगवदुपासनारत श्रीगुरुदेव के आश्रय ग्रहण करे, एवं उन गुरुदेव को ही आत्मा तथा इष्टदेव मान कर निष्कपट भाव से परिचर्य्या करके भागवत धर्म शिक्षा करे। इस रीति से श्रीगुरुभक्ति के द्वारा भागवत धर्म शिक्षा ग्रहणकारी व्यक्ति के प्रति आत्मा आत्मप्रद श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥१२॥

उस भक्ति का अनुष्ठान शास्त्र ज्ञानपूर्वक ही करना चाहिये।

प्रज्ञां प्रकुर्वीत ब्राह्मण इति श्रवणात् । ते च जीवा मुक्तावपि हरिमुपासते । एतत् सामगायन्नास्ते "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" इति श्रवणात् ॥१३॥

इत्थञ्च तदनुभविनान्तद्दासत्वात्तद्रूपगुणविभूतीनां लावण्यचन्द्रिकात्वप्रसङ्गः । तदित्थं विभुत्वाणुत्वादिमिथोविरुद्ध शास्त्रैकगम्यनित्यगुणयोगादीश्वरजीवयोर्भेदः सार्वदिकःसिद्धः ॥१४॥

ननु किमिदमपूर्वमुच्यते, ईशादन्यो जीव इति "त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते तद्योऽहंसोऽसौ योऽसौ सोऽहं तत्त्वमसीति" व्यवहारदशायां । 'यत्रत्वस्य सर्व्वमात्मैवाभूत्तत् केन कम्पश्येदिति' मोक्षदशायाञ्च तयोरभेदश्रवणात् ।

श्रुति निर्णय भी इस प्रकार है—धीर व्यक्ति उन भगवान् को शास्त्र से जानकर ही भक्ति करें। मुक्त जीवगण भी श्रीहरि की उपासना करते हैं, श्रुति प्रमाण इस प्रकार है,—मुक्त पुरुषगण साम गान परायण होते हैं" भगवान् विष्णु के उक्त परम पद का ज्ञानी व्यक्तिगण सर्वदा दर्शन करते हैं ॥१३॥

इस प्रकार भगवदनुभवी एवं भगवद् दासत्व परायण व्यक्ति भगवत् रूप गुण विभूति लावण्य चन्दिका के द्वारा अपने को उद्भासित करता है। इस प्रकार विभुत्व अणुत्वादि परस्पर विरुद्ध गुण युक्त शास्त्रैकगम्य नित्यगुणयोग से जीव ईश्वर का भेद नित्य सिद्ध है ॥१४॥

आप तो अद्भुत बात कर रहे हैं—"जीवईश्वर से भिन्न है" श्रुति तो इस प्रकार कहती है–"जो तुम हो वही मैं हूँ"हे भगवन् ! हे देव ! तुम मैं ही हूँ, और जो मैं ही हूँ सो ही वह है, वह तूही है, एवं मोक्ष दशा में भी जब कि सब जीव की आत्मा ही है, तब कौन किस

भेदस्यावस्तुत्वाद्तद्ग्राही निन्द्यते, "यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" 'यदा ह्येवैष उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवतीत्यादि' श्रुतौ ॥१५॥

नैतच्चतुरस्रम् "द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति । पूर्वस्याम्' ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेवभवति ।
एवं मुनेर्विजानतः आत्मा भवति गौतम ।

निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति इति । परस्याश्च तयोर्भेदः श्रवणात्॥ १६॥

का दर्शन करेगा । इत्यादि श्रुति वाक्यों में दोनों का अभेद वर्णित है, भेद अवस्तु होने से शास्त्रों में भेद मानने वाले की निन्दा की गई है" "जो कुछ यहाँ है, वही वहाँ है, जो वहाँ है, वह यहाँ भी है, जो इस ब्रह्म में भिन्नता को देखता है, वह मृत्यु से भी अधिक मृत्यु को प्राप्त करता है" इस ब्रह्म तत्त्व में जो कुछ भी भेद देखता है, उसी को भय होता है, ॥१४॥

उक्त कथन युक्ति युक्त नहीं है, कारण श्रुति में लिखित है - दो पक्षी "जीव एवं ईश्वर"—जो परस्पर सख्यभावाक्रान्त हैं, एक ही साथ, वृक्ष रूप शरीर में निवास करते हैं उन में से एक पक्षी जीव' वृक्ष के फल–"कर्मफल" को खाता है, अर्थात् भोग करता है, अपर पक्षी जो ईश्वर है—साक्षी रूप से प्रकाशित होता है । उस के पश्चात् लिखा है, जिस प्रकार शुद्ध जल शुद्ध जलमें मिलने से उसके समान हो जात्ता है, इसी प्रकार हे मुने गौतम ! ज्ञानी की आत्मा शुद्ध–उपाधि रहित–होकर परमात्मा की परम साम्यता को प्राप्त करती है,

भगवताच मुक्तौ भेदः स्मर्य्यते—

"इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।

सर्गेऽपि नोऽपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति चेत्यादौ" ॥

इत्यञ्च"ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"इत्यादौ ब्रह्म-सदृशः सन्नित्येवार्थः सुघटस्तत्रैव शब्दस्य सादृश्यादेव इतरथा ब्रह्मभावोत्तरो ब्रह्माप्ययो विरुद्धः स्यात् । "यदेवेहेत्यादौ" ब्रह्माविर्भावेषु भेदाग्राही निन्द्यते । यदाह्येवेत्यादौ ब्रह्मणि कपटं प्रतिसिध्यते इति न कापि क्षतिः ॥१७॥

एवं सति "त्वं वा अहमस्मीत्यादौ" तयोरभेदः प्रतीतः । स खलु तदायत्त वृत्तिकत्वतद्व्याप्यत्वाभ्यां सङ्गच्छेत । यथा प्राण संवेदे, प्राणायत्त वृत्तिकत्वाद्वागादेः प्राणरूपता पठ्यते

इन दोनों में भेद का ही प्रतिपादन किया गया है ॥१६॥

श्रीगीता में भी पद्मनाभ भगवान् मुक्ति दशा में जीवेश्वर का भेद मानते हैं "आत्मज्ञान प्राप्तकर जीव मेरे समान धर्म युक्त हो जाता है, वह सृष्टि के समय उत्पन्न नहीं होता है, और प्रलय में नष्ट भी नहीं होता है। इस प्रकार ब्रह्म होकर ही ब्रह्म को प्राप्त करता है" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म के समान होना ही यथार्थ अर्थ है, श्रुति में "एवं' शब्द का अर्थ" 'इव' समान ही है, अन्यथा ब्रह्मभाव प्राप्त करने के पश्चात् ब्रह्म को प्राप्त करना विरुद्ध होगा। "यदेवेह" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म के आविर्भावों में भेद दर्शी की निन्दा की गई है, "यदाह्येव" इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म में कपट होने का निषेध किया है, अतः कोई हानि नहीं है ॥१७॥

"तू ही मैं हूँ" इत्यादि श्रुति वाक्य में जो जीव ईश्वर का अभेद प्रतीत होता है, सो जीव की वृत्ति ईश्वर के अधीन होने के कारण प्राण रूप ही कहा गया है, छान्दोग्य उपनिषद् में कथित है

छान्दोग्ये "न वै वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीत्याचक्षते प्राण इत्येवाचक्षते प्राण ह्येवैतानि सर्वाणि भवतीति ।" यो यद्‌व्याप्यः स तद्रूपः स्मर्यते । वैष्णवे—

"योऽयं तवागतो देव समीपं देवता गणः ।
स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवानिति ॥
गीतासु च– "सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः"

इति । यत्र त्वस्येत्यत्र तु मुक्तस्य जीवस्य विग्रहेन्द्रियादिकं सर्वं भगवत् संकल्पादेव भवतीत्युच्यते । अन्यथा सर्व मित्येतद्‌व्याकुप्येत ॥१८॥

यत्तु वदन्ति "त्वंवा" इत्यादौ जहदजहत्स्वार्थलक्षणया विभुत्वाणुत्वादीन् गुणान् हित्वा चैतन्यमात्रं लक्षणीयमिति ।

कि—वाणी, चक्षु, श्रोत्र, एवं मन, ये आत्मा नहीं है, प्राण को आत्मा कहा जाता है । प्राण ही सब कुछ है, क्योंकि जो जिसके भीतर होता है, वह उसी का रूप होता है, विष्णुपुराण में लिखा है, "हे देव ! तुम्हारे समीप में आए हुए देवगण तुम्हारे ही रूप हैं, कारण-तुमही जगत् के स्रष्टा एवं सर्वगत हो" श्रीगीता में उक्त है—"तुम समस्त जगत् में व्यापक हो इससे यह सब तुम ही हो" । "जहाँ तो इसका" इत्यादि श्रुतियों में मुक्त जीव की देहेन्द्रिय आदि सब भगवत् संकल्प से ही होना कहा गया है, नहीं तो "सर्व" शब्द व्यर्थ होता है ॥१८॥

कुछ व्यक्ति कहते हैं—"त्वं वा" तुम्हीं" इत्यादि श्रुतियों में जहत् अजहत् स्वार्थ लक्षणा के द्वारा' ईश्वर के विभुत्व सर्वज्ञत्व, जीवके अणुत्व, अल्पज्ञत्व गुणों को त्याग कर केवल चेतना को ग्रहण किया गया है, सो ठीक नहीं है । कारण नित्य गुणों को वाणी मात्र से त्यागना असम्भव है, और सर्व शब्द के अवाच्य में लक्षणा का

तन्मन्दम् । नित्यगुणानां वाङ्मात्रेण हानासम्भवात् सर्व-शब्दावाच्ये लक्षणाया अयोगाच्च । तदवाच्यं खलु त्वया ब्रह्माभ्युपगम्यते ॥१९॥

ननु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेत्यादि" श्रुतिरेव ब्रह्मणस्तथात्वमाह । मैवमेतत् । कृत्स्नावाच्यताया स्तत्राभिधानात् । यदुक्तं श्रीभागवते—

"कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीश"

इति । अन्यथा"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्तीति" श्रुतिः "सर्वैश्च वेदैरहमेव वेद्य" इति स्मृतिश्च व्याकुप्येत । तत्रैव वाक्ये यत इति अप्राप्येति च विरुध्येत ॥२०॥

यत्त्वविद्यावच्छिन्नमविद्या प्रतिविम्विते वा ब्रह्मैव जीवः । 'आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथक् पृथक् भवेत् ।

योग भी असम्भव है, मायावादीगण ब्रह्म को अवाच्य अपदार्थ शब्द का अविषय मानते हैं, इस से लक्षणा भी नहीं हो सकती है ॥१९॥

"जहाँ से वाणी उसे न पाकर मनके साथ लौट आती है" इत्यादि श्रुतियों ब्रह्मको उस प्रकार अर्थात् शब्द का अविषय कहती हैं, ऐसी बात नहीं है । सम्पूर्ण रूप से जाना नहीं जाता है, अतः वैसा कहागया है । श्रीभागवत में भी कहा है—ब्रह्मा भी जिसे पूर्ण रूपसे वर्णन करने में असमर्थ हैं, यदि ऐसा न माना जाय तो "समस्त वेद जिसकी पूर्णरूप से वर्णन करते हैं, इत्यादि एवं "मैं ही समस्त वेदों के द्वारा जाना जाता हूँ" इत्यादि स्मृतियाँ व्यर्थ हो जायेंगी । उक्त श्रुति में "यतः" एवं "अप्राप्य" शब्दों से विरोध उपस्थित होगा ॥२०॥

अविद्या से आवृत--अविद्या में प्रतिविम्वित ब्रह्म ही जीव है, जिस प्रकार एक ही आकाश घट आदि में पृथक् पृथक् हो जाता

तथात्मैको ह्यनेकस्थो जलाधारेष्विवांशुमान्" इत्यादि श्रुतेः। तद्विज्ञानेनाविद्याविनाशे तु तदद्वैतं सिद्धं घटाद्युपाधिनाशे-सत्याकाशाद्यद्वैतवदिति वदन्ति । तदसत्। जडीयाविद्यया चैतन्यराशेश्छेदायोगात् नीरूपस्य विभोः प्रतिविम्बायोगाच्च। अन्यथा वायुदिगादेस्तदापत्तिः। आकाशस्थज्योतिरंशस्य तु तत्तया प्रत्ययो भ्रम एवेति तत्वविदः श्रुतिस्त्वनुवादिनी त्याहुः ॥२१॥

यत्तु वदन्ति अद्वितीये शुद्ध चैतन्यतदज्ञानाज्जीवेश्वरा--भावाध्यासः नभस्वरूपापरिज्ञानात्तत्र यथा नीलिमाध्यस्यते

है, अथवा एक ही सूर्य्य अनेक जलपात्रों में प्रतिविम्बित होता है, उस प्रकार एक आत्मा अनेक प्रतीत होता है" इत्यादि श्रुतियों का निर्देश है। यह भी कहते हैं कि उस ब्रह्मज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से अविद्या का विनाश होने पर वह ब्रह्म अद्वैत होता है, जिस प्रकार घट आदि उपाधि नाश होनेपर परिच्छिन्न आकाश अपरिच्छिन्न रहता है। इस प्रकार सिद्धान्त असत् है। जड़ीय अविद्या चैतन्य समूह को परिच्छिन्न नहीं कर सकती है, रूपहीन 'नीरूप' विभु का प्रतिविम्ब भी नहीं होता है, अन्यथा वायु दिगादि का प्रतिविम्ब मानना पड़ेगा। प्रतिविम्ब रूप से जो कुछ कहा जाता है, वह आकाशस्थ ज्योति अंशका ही प्रतिविम्ब होता है, वह भ्रम रूप से होता है, आकाश शब्दसे कहते हैं, तत्त्वविद् गण ऐसा ही कहते हैं, श्रुति भी उस प्रकार ही अनुवाद कर कहती है ॥२१॥

कुछ लोक प्रकारान्तर से अद्वैत सिद्ध करना चाहते हैं, उनका कहना है,—अद्वितीय शुद्ध चैतन्य में उसके अज्ञान से ही जीव और ईश्वर भाव का अध्यास होता है, जिस प्रकार आकाश स्वरूप अवगत न होने पर उसमें नीलवर्ण का आरोप होता है, आकाश का स्वरूप

तज्ज्ञानेन तस्मिन्नध्यस्तस्य तस्य विनिवृत्तौ तु शुद्धं तदवशिष्यते इति ॥२२॥

तदिदं रभसाभिधानमेव। अविषये तस्मिन्नध्यासायोगात्, नभसो ज्ञानविषयत्वात् तत्रनीलिमाध्यासः सम्भवी। नच तद्वत् शूद्ध चैतन्य ज्ञानविषयो भवतां तस्माद्यत्किञ्चिदेतत्। किञ्च कीदृशं ज्ञानं निवर्त्तकमिष्यते,शुद्धचैतन्यं वृत्तिरूपम्वा। नाद्यः, तस्य नित्यत्वेन नित्यमध्यस्तनिवृत्तिप्रसङ्गात्। नापि वृत्तिरूपं, तस्य सत्यत्वे द्वैतापत्तेः, मिथ्यात्वे कथमध्यस्त निवर्त्तकता। सत्यस्य हि शुक्त्यादि ज्ञानस्य रजताद्यध्यस्तस्य निवर्त्तकता दृष्टा ॥२३॥

ज्ञान होने से उस में अध्यस्त नील वर्ण की निवृत्ति हो जाती है, तब शुद्ध आकाश ही दह जाता है ॥२२॥

जल्दी वाजी से विना विचार कर ही उस प्रकार कह दिया है। ब्रह्मतो वाणी मनका अविसय है, उसमें जीव ईश्वर का अध्यास कैसे सम्भव होगा, दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक में अत्यन्त वैषम्य है, आकाश ज्ञान विषय है, अत: आकाश में नीलिमा का अध्यास सम्भव है, किन्तु मायावादी के मतमें शुद्ध चैतन्य आकाश के समान ज्ञान विषय नहीं है, वह तो यत् किञ्चित् ही है, अर्थात् अनिर्वचनीय ही है। आपतो उस अध्यास ज्ञान का निवर्त्तक भी मानते है, निवर्त्तक ज्ञान का स्वरूप क्या होगा? शुद्धचैतन्य ज्ञान, अथवा वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य का ज्ञान? प्रथमकल्प में दोष यह है कि—ब्रह्म नित्य है, तद् गत अध्यास भी नित्य है, अत: नित्य अध्यास की निवृत्ति किस प्रकार होगी। द्वितीय कल्प वृत्तिरूप है, उस वृत्ति को सत्य मानने से द्वैत ही हो जायेगा, और यदि वह वृत्ति मिथ्या हो तो अध्यास की निवृत्ति कैसे होगी? कारण सत्य, शुक्ति आदि के ज्ञान से रूप

यत्तु फलवत्यज्ञातेऽर्थे शास्त्रतात्पर्यवीक्षणात् तादृग भेदस्तत्तात्पर्यगोचरः । वैफल्याज्ज्ञातत्वाच्च भेदस्तद्गोचरो न स्यात्, किन्त्वनुवाद एव सः । अद्भ्यो वा एषः प्रातरुदेति आपः सायं प्रविशतीतिवदिति तन्मन्दम् ।

"पृथगात्मानं प्रेरितारञ्चमत्वा जुष्टस्तत स्तेनामृतत्वमेति ।
जुष्टं यदा पश्यन्त्यन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः" ॥

इत्यादौ, तत्र फलश्रवणात्, विरुद्धधर्मावच्छिन्नप्रतियोगितयालोके तस्याज्ञातत्वाच्च । ते च धर्माः विभुत्वाणुत्वादयः, शास्त्रैक गम्या भवन्ति । अभेदस्त्वफलस्तत्र फलानङ्गीकारात् अज्ञातश्च नरशृङ्गवदसत्वादेव । अभेद बोधिका

में स्थित अध्यास की निवृत्ति देखी जाती है ॥२३॥

पुनर्वार समाधान हेतु मायावादी कहते हैं,—फलवति अज्ञात् अर्थ में शास्त्रोपदेश का तात्पर्य्य है, अतएव उस प्रकार अभेद ही शास्त्र का तात्पर्य माना गया है, शास्त्र का तात्पर्य भेद में नहीं है, और वह भेद ज्ञात है, अतः भेद कथन में शास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं है। जिस प्रकार कहा जाता है कि प्रातः काल में सूर्य्य जल से उदित हैं, और सायंकाल में जल में प्रविष्ट होते हैं। यह ठीक कथन नहीं है, श्रुति कहती हैं,—जब जीव अपनी आत्मा को एवं प्रेरण करने वाले परमात्मा को पृथक् जानकर उपासना करता है, तब वह जीव परमात्मा से माया निवृत्ति होकर मुक्त होता है, जीव जब अपने से पृथक् स्वतन्त्र ईश्वर को एवं उनकी महिमा को जानलेता है, तभी शोक रहित होकर महीयान् होता है, इत्यादि श्रुति में भेद प्रतिपादन है, और उसका फल भी मुक्ति है, परस्पर विरुद्ध धर्मयुक्त पदार्थ का भेद ज्ञान शास्त्र से ही होता है, वह ज्ञान जगत् में अज्ञात है, वे सब धर्म विभुत्व ईश्वरगत अणुत्व जीवगण होते हैं, ये सब शास्त्र से ही

श्रुतयस्तु तदायत्तवृत्तिकत्व तद्व्याप्यत्वाभ्यां संगमिता एव ॥२४॥

किञ्चाभेदो ब्रह्मेतरो ब्रह्मात्मको वा, नाद्यः, अभेदहानात् तदितरस्य मित्थ्यात्वेन श्रुतिनामतत्त्वावेदकत्वापत्तेश्च सत्यताच। भेदस्यमिथो विरुद्धयोरन्यतर निषेधस्यान्यतर-विधिव्याप्तत्वाच्च। न चान्त्यः; ब्रह्मणः स्वप्रकाशतया नित्यसिद्धश्रुतीनां सिद्धसाधनतापत्तेश्च ॥२५॥

अपि च नाभेदस्योपदेशः सिद्धति। उपदेष्टुरनिर्णयात्। यथा, तदुपदेष्टा तत्वज्ञो नवा? आद्येऽद्वितीयमात्मानं विजानतः

जाने जाते हैं, शास्त्र द्वारा उक्त अभेद अस्वीकृत होने से मायावादी द्वारा उद्भावित अभेद फल विफल है, और नरश्रृङ्ग के समान असत्य होने से अज्ञात है, अभेद को कहने वाली श्रुतियां तो जीव को ईश्वराधीन कहती है, कारण उसकी निखिल वृत्तियां ईश्वराधीन ही है, जीव स्वयं व्याप्य है, और तदायत्तवृत्ति के हैं, अतएव अभेद बोधिका श्रुतिसार्थक होती है ॥२४॥

और भी पुछते हैं, अभेद ब्रह्म से पृथक् है, अथवा ब्रह्मात्मक है? प्रथम कल्प तो हो ही नहीं सकता, कारण उस से अभेद की हानि होती है, ब्रह्मभिन्न समस्त मित्थ्या होने से श्रुतियों में मिथ्या प्रतिपादकता आ जावेगी, इस से भेद भी सत्य हो जाती है, कारण-भेद एवं अभेद दोनों परस्पर विरुद्ध होने से एक के निषेध से दूसरे की सिद्धि हो जाती है, कल्प भी नहीं हो सकता है, अर्थात् अभेद को ब्रह्मात्मक भी नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्म स्वप्रकाश होने से अभेद भी नित्यसिद्ध है, यदि श्रुति उस को प्रतिपादन करती है, तो सिद्ध-साधनता दोष आजाता है ॥२५॥

और भी कहते हैं,—अभेद का उपदेश हो ही नहीं सकता, कारण;—उपदेशक का निश्चय है ही नहीं, और अभेद का जो

तस्य नोपदेश्यं भेददृष्टिरिति। न तं प्रति उपदेशः सम्भवेत्। अन्त्येऽप्यज्ञत्वात् नात्मज्ञानोपदेष्टृत्वम् ॥२६॥

यथाधिगताभेदस्य तस्य बाधितानुवृत्तिरूपमिदं भेददर्शनं मरीचिकावारिबुद्धिवदतो नोपदेशानुपपत्तिरितिचेन्मन्दम्। दृष्टान्तविरोधात्। तद्बुद्धि हि बाधितानुवर्तमानापि न वार्याहरणे प्रवर्तयेदेवमभेदज्ञानबाधिता भेद दृष्टिरनुवर्तमानापि मिथ्यार्थविषयत्व निश्चयान्नोपदेशे प्रवर्तयेदिति विषयनिदर्शनम् ॥२७॥

यत्तु शुद्धे चैतन्ये अज्ञानेन कल्पितमिदं विश्वं तज्ज्ञानेन बाध्यते। रज्जु भुजंगवत् तेनाद्वैतं सिद्धमेवेति वदन्ति, तदपि

उपदेष्टा है, वह तत्त्वज्ञ है अथवा नहीं ? तत्त्वज्ञो हो तो उसे कह नहीं सकते, क्योंकि उपदेशक तत्त्वज्ञ होने से अखण्ड तत्त्व ज्ञानी उपदेशक की उपदेश योग्य भेद दृष्टि हो नहीं ही सकती, न तो उस के प्रति उपदेश ही सम्भव है। और यदि उपदेष्टा अज्ञ है—तो वह आत्मज्ञान का उपदेशक नहीं हो सकता ॥२६॥

यदि कहा जाय कि,—यह अभेद दर्शन उस अभेद ज्ञानि के समीप में मरीचिका में वारि बुद्धि के समान बाधितानुवृत्ति रूप है, अर्थात् दूर की हुई भ्रान्ति स्मरण से पुनर्वार जग जाती है, एतज्जन्य शास्त्रोपदेश व्यर्थ नहीं है, ऐसा कथन अशोभनीय है, कारण दृष्टान्त विरोध होता है, मरीचिका में वारि बुद्धि बाधित हो जाने पर किसी की भी प्रवृत्ति, अनुवृत्ति से भी जलाहरण के निमित्त नहीं होती है। उसी प्रकार, अभेद ज्ञान के द्वारा भेद बुद्धि विनष्ट हो जाने पर पुनर्वार बाधितानुवृत्ति से मिथ्या विषय को सत्यरूपसे अपनाने के कारण पुनर्वार उपदेश ग्रहण की उपयोगिता नहीं होती। यह तो बाधितानुवृत्ति के विषय का निदर्शन है ॥२७॥

निरवधानमेव, क्षोदाक्षमत्वात् । तथाहि क्वेदमज्ञानं ब्रह्मणि जीवे वा ? न प्रथमः स्वप्रकाशचैतन्ये तस्मिंस्तद्योगा-सम्भवात् तुरीयत्वहानाच्च । न द्वितीयः, कल्पनात् पूर्वं जीव भावासिद्धेः ॥२८॥

अथाज्ञानं सत्यं न वा । नाद्यः अनिवृत्तिप्रसङ्गात् । नाप्यन्त्यः, प्रतीति विरहात् नच सदसद्विलक्षणत्वादिष्टसिद्धिः । तादृशे प्रमाणाभावात् । घटादीनां सत्वं खपुष्पादीनामसत्वं, घटादीनामेवं देशकालव्यवस्थया सदसत्वमिति प्रकारत्रयतः

कुछ लोक कहते हैं,—शुद्ध चैतन्य में उक्त विश्व अज्ञान कल्पित है, अतः शुद्ध चैतन्य के ज्ञान से उक्त अज्ञान विदूरित हो जाता है, जिस प्रकार रज्जु में सर्प बुद्धि होने पर, रज्जु ज्ञान से वह भ्रान्ति विदूरित हो जाती है, इस से ही अद्वैत सिद्ध होता है, विकृत मस्तिष्क का ही यह कथन है, कारण-यह युक्ति प्रकृत विषय में नहीं लग सकती है, पहले तो उस अज्ञान का परिष्कार होना आवश्यक है, वह अज्ञान, किस में है ? ब्रह्म में अथवा जीव में ? ब्रह्म में तो वह अज्ञान हो ही नहीं सकता है, ब्रह्म तो स्वप्रकाश है, ऐसा होने से ब्रह्म की तुरीयावस्था की हानि होगी। द्वितीय पक्ष भी असम्भव ही है,ब्रह्म में विश्व अज्ञान कल्पित होने के पहले मायावादि के मत में जीवभाव होता ही नहीं ॥२८॥

अनादि मानकर समाधान करने पर प्रश्न होगा कि वह अज्ञान सत्य है, अथवा नहीं ? सत्य ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होगी ही नहीं, अज्ञान मिथ्या होने से "मैं अज्ञ हूँ" इस प्रतीति होती ही नहीं अज्ञान लक्षण ही क्या है ? यदि उसे सत् असत् से विलक्षण रूप कहा जाय तोभी इष्ट सिद्धि नहीं होगी, कारण, अज्ञान;—सत् असत् से विलक्षण है, इस में कोई प्रमाण नहीं है। घट पट आदि की सत्ता, आकाश कुसुम की असत्ता, और देश काल की व्यवस्था के अनुसार

स्यैवानुभवान्नातोऽन्यत् सदसद्विलक्षणमनिर्वचनीयमज्ञानं स्वीकर्त्तुं शक्यं । यत्किञ्चिदेतत् ॥२६॥

तस्मात् पराख्या शक्तिमता भगवता निमित्तेन, प्रधानादि शक्तिमताच्च तेनोपादानेन सिद्धमिदं जगत् पारमार्थिकमेव । "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय," "स तपोऽतप्यत," "स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत्, यदिदं किञ्चित् कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः, याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्, शाश्वतीभ्यः समाभ्यः" "तदात्मानं स्वयमकुरुते" त्यादि श्रवणात् । "तदेतदक्षरं नित्यं जगन्मुनिवराखिलं । आविर्भावतिरोभाव जन्मनाशविकल्पवत् ॥" इति वैष्णवात् ।

"ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यञ्चैव प्रजापतिः ।
सत्याज्जातानि भूतानि सत्यं भूतमयं जगदिति" ।

घट का सत् असत् होना को छोड़कर तीसरी अवस्था होती ही नहीं, इस प्रकार, अज्ञान को सत् असत् के अतिरिक्त रूप अनिर्वचनीय भी नहीं माना जा सकता है ॥२६॥

तज्जन्य पराशक्ति से युक्त भगवान् निमित्त होने के कारण, प्रधानादि शक्ति युक्त भगवान् उपादान कारण होने से इस जगत् की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है. श्रुति इस प्रकार है—"उसने इच्छा की, मैं अनेक बन जाऊँ" "उसने तपकिया,, "उसने तप के द्वारा सब कुछ उत्पन्न किया"। "कवि (ज्ञानवान्) है, मनीषी (मननशील) है, परिभू (स्वतः सिद्ध) है; और परम मङ्गल रूप अर्थों को यथायथ रूप से विधान करता है" "तब उसने अपने आप को स्वयं उत्पन्न किया" इत्यादि। विष्णु पुराण में उक्त हैं,—"हे मुनीश्वर ! ये समस्त जगत् अक्षय एवं नित्य है। जन्म एवं नाश के विकल्प के

महाभारताच्च। "एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म" त्यत्रापि वनलीन विहङ्गादि न्यायेन तदपि जगत् सत्यं सिद्धं। भ्रमवादस्तु सर्वथानुपपन्नः। "सोऽकामयत" इत्यादि श्रुति व्याकोपात्। ३०

किञ्च। क्व कस्यायं भ्रमः शुद्ध चैतन्ये जीवस्येतिचेन्न। तस्याप्रत्यक्षत्वात्। अध्यारोपे ह्यधिष्ठानसाक्षात्कारस्तन्त्रं। नच शुद्धचैतन्यं स्वस्मिन् जगद्रूपेण पश्यति। तस्य नित्यसिद्धस्वरूपज्ञानत्वात्। किञ्च। सादृश्यावलम्वी भ्रमोऽनुमीयते, स्थाणुः पुमानित्यादौ। तथाच भ्रमविषयाज्जगतोऽन्यत् पारमार्थिकं सिद्धं। अस्ति हि शुक्ति रजतादन्यत्,

---

समान उसका आविर्भाव तिरोभाव होता है"। महाभारत में उक्त है,—"ब्रह्म सत्य है, तप सत्य है, प्रजापति भी सत्य है, सत्य से सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। यह भूतमय जगत् सत्य है"। श्रुति कहती है, "एक ही अद्वितीय ब्रह्म है"। यहाँपर भी वन में लीन विहङ्गम के समान. जगत्;—ब्रह्म में सत्ताके सहित लीन होने से भी जगत् की नित्यता सिद्ध होती है। और भ्रमवाद तो सर्वथा असिद्ध ही है। कारण,—"उसने इच्छा की" इत्यादि श्रुतियाँ व्यर्थ हो जायेंगी ।।३०

और भी कहना है—यह भ्रम किस का ? और कहाँ होता है ? यदि कहो कि—शुद्ध चैतन्य में जीव ब्रह्म है, ऐसा है ही नहीं। शुद्ध चैतन्य तो प्रत्यक्ष है ही नहीं, और शुद्ध चैतन्य अपने में आपको जगत् रूप में न तो देखता ही है, क्योंकि उसका नित्य सिद्ध स्वरूप ज्ञान है। और कहते हैं,—जो भी भ्रम होता है' वह समानता के आधार पर होता है, जिस प्रकार स्थाणु में मनुष्य का भ्रम होता है, उस से भ्रम के विषय से पृथक् जगत् पारमार्थिक सिद्ध होता है। जिस प्रकार शुक्ति से पृथक् बाजार में स्थित चांदी सत्य है, इस से भ्रमवाद सिद्ध नहीं होता है, तज्जन्य ईश्वर से पृथक् उसी के समान

पारमार्थिकं हट्टस्थं तदित्यनुपपन्नस्तद्वादः। तस्मादीश्वरादन्यस्तद्वन्नित्यचेतनस्तद्दासो जीवोभवतीति सिद्धम्।३१

इति वेदान्तस्यमन्तकस्य, जीवतत्त्व निरूपणे तृतीयः किरणः।

चतुर्थ किरणः

अथ प्रकृतितत्वं निर्णीयते।

सत्वादि गुणत्रयाश्रयो द्रव्यं प्रकृतिर्नित्याच्च सा।
गौरनाद्यन्तवती सा जनित्री भूतभाविनी।
सितासिताच रक्ताच सर्वकामदुघा विभोरित्यादि श्रुतेः।
त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादि प्रभवाप्ययम्,।
अचेतनापरार्थाच नित्या सततविक्रिया,।
त्रिगुणं कर्मिणां क्षेत्रं प्रकृते रूपमुच्यते"॥

इति स्मरणाच्च ॥१॥

नित्य चेतन उसका दास जीव होता हैं, यह सिद्ध हुआ ॥३१॥

वेदान्त स्यमन्तक के जीव निरूपण नामक तृतीय किरण की तत्त्व प्रकाश विवृति समाप्त ॥३॥

चतुर्थ किरणः

अनन्तर प्रकृति तत्त्व का निरूपण करते हैं। प्रकृति तत्त्व,— सत्व, रज, तम, ये तीन गुणों का आश्रय है, एवं वह नित्य है। श्रुति संवाद भी इस प्रकार है—वह गौ है, अनादि एवं अनन्त स्वरूपा है, उत्पन्न करने वाली है, प्राणियों की रक्षा करने वाली है, उसके श्वेत,

तत्र प्रकाशादिहेतुर्गुणः सत्त्वं । राग दुःखादि हेतु रजः । प्रमादालस्यादिहेतुस्तु तमः । एषां साम्येप्रलयः, एकदेहस्थ कफ वातपित्तसाम्ये मृत्युरिव । अङ्गाङ्गिभावेन वैषम्ये तु महदादिसर्गः स्यात् । प्रलये स्वरूपः साम्यरूपः परिणामः, सर्गेतु विरूपः । स इति सततविक्रियेत्युक्तम् । प्रकृतेरस्याः प्रथमपरिणामो नात्मन्यध्यवसायहेतुः स च त्रिविधः ।
सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महानिति वैष्णवाच्च
॥२॥

तस्मिन् विकारविशेषोऽहङ्कारः । आत्मनि देहाहम्भावहेतु

रक्त, कृष्ण ये तीन वर्ण हैं, भगवान् के कार्य सम्पादन करती है। स्मृतियों में लिखित है,—वह प्रकृति, जगद्योनि है, अनादि है, एवं उत्पत्ति लय का स्थान है, अचेतना है, परार्था है, अर्थात् जीव की सेवा के लिए अपनी सामग्री प्रस्तुत करती है। नित्या है, एवं निरन्तर परिणामवाली है। कर्मी जीव हैं, उनका ओत्रिगुणात्मक क्षेत्र है, उसको प्रकृति कहते हैं ॥१॥

उक्त प्रकृति में जो प्रकाशादि गुण विद्यमान है, उसे सत्त्व कहते हैं, राग दुःखादि हेतु को रजः, प्रमादालस्यादि हेतु को तमः कहते हैं। सत्त्व रज तम की साम्यावस्था प्रलय है। जिस प्रकार एक देह में स्थित वात पित्त कफ की साम्यावस्था मृत्यु होती है, जिस समय उक्त गुणत्रयों में परस्पर अङ्गाङ्गि भाव से विषमता होती है, तब महदादि तत्त्वों की सृष्टि होती है। प्रलयावस्था में प्रकृति का स्वरूप साम्य रूप होता है, और सृष्टि के समय वैषम्य होता है, इससे ही यह प्रकृति निरन्तर विकृति क्रियाशीला है, इस प्रकृति के प्रथम परिणामादि के द्वारा आत्मा में अनध्यवसाय हेतु जो महत् तत्त्व उत्पन्न होता है, वह तीन प्रकार का है, विष्णु पुराण में उक्त है—महत्तत्त्व,—सात्त्विक राजसिक तामसिकभेद से तीनप्रकारके परा-

रिति । सच सात्विको राजस्तामसश्चेति त्रिविधः । क्रमाद्वैकारिक–तैजसभूतादिशब्दैश्चाभिधीयते । मध्यमस्तु द्वयोःप्रवर्तकतया सहकारीत्याहुः । सात्विकादहंकारादिन्द्रियाधिष्ठात्र्यी देवता मनश्च । राजसाद्बाह्येन्द्रियाणि दश । तामसात्तु तन्मात्रद्वाराकाशादीनिपञ्चेति एवमेवोक्तमेकादशे-

"ततो विकुर्वतो जातो योऽहंकारोविमोहनः
वैकारिकस्तैजसश्चतामसश्चेत्यहंत्रिवृत् ॥
तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ।
आर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ।
तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतादिति ।

तामसादर्थः पञ्चभूतलक्षणः । तैजसादिन्द्रियाणिदश ।

महत्तत्त्व का विकार विशेष ही अहङ्कार है, वह आत्मा में देहाभिमान का कारण है, एवं सात्त्विक, राजस, तामस, भेद से तीन प्रकार है, इसे क्रमशः वैकारिक, तैजस, भूतादि शद्वों से कहते हैं। उन में जो मध्यम राजस है, वह सत्त्व एवं तम का प्रवर्त्तक होने से सहकारी होता है, सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रिय के अधिष्ठाता देवता और मन होता है, राजस से दश वहिरिन्द्रियां होती है, तामस अहङ्कार से तन्मात्राओं के द्वारा आकाशादि पञ्चमहाभूत की सृष्टि होती है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में इसका विवरण है,- ,'उस विकार प्राप्त महत्तत्त्व से जीवों को मोहित कारक अहङ्कार उत्पन्न हुआ था। वैकारिक, तैजस, और तामस वृत्ति युक्त अहङ्कार ही है, तन्मात्रा, इन्द्रिय, मन का कारण जड़ चेतन ग्रन्थिमय अहङ्कार ही है। तन्मात्र से तामस अहङ्कार होता है, उस से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है, तैजस अहङ्कार से इन्द्रियां, एवं वैकृत अहङ्कार से एकादश देवता उत्पन्न हुए हैं, पञ्चभूत की उत्पत्ति तामस से हुई

वैकृतादेकादश देवता आसन् मनश्चेत्यर्थः । तृतीये च—

"महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्य चोदितात् ।
क्रियाशक्तिरहंकार त्रिविधः समपद्यत ॥
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतोभवः ।
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च भूतानां महतामपीति ॥
मनसश्चेति चाद्दे्वतानां चेतिबोध्यं क्रमादितिच ॥३॥

अयमत्र निष्कर्षः । द्विविधं खल्विन्द्रियं अन्तरिन्द्रियंबहिरिन्द्रियंचेति । तत्रान्तरिन्द्रियं मनः सात्विकाहंकारोपादनकं द्रव्यं संकल्प विकल्पहेतुर्हृत्प्रदेशवृत्तिः । तदेव क्वचिदध्यवसायाभिमानचिन्तारूपकार्यभेदाद् बुद्धचहंकारचित्तसंज्ञांधत्ते

है। तैजस से दस इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। वैकृत से एकादश देवता और मन उत्पन्न हुए। श्रीमद् भागवत के तृतीय स्कन्ध में उक्त है-- भगवत् इच्छा से प्रेरित होकर महत्तत्त्व से क्रिया शक्ति रूप वैकारिक तैजस एवं तामस भेद से तीन प्रकार अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जिस से मन, इन्द्रियां एवं पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए, मनसश्चेति शब्द में "च" से क्रमशः देवता का भी ग्रहण होता है ॥३॥

निष्कर्ष यह है,—इन्द्रियां दो प्रकार की हैं, अन्तरिन्द्रिय, एवं बहिरिन्द्रिय। इन में मन अन्तर इन्द्रिय है, वह सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न होता है, वह द्रव्य है। संकल्प विकल्पात्मक है, हृदय प्रवेश की वृत्ति रूप है, अध्यवसाय, अभिमान, एवं चिन्ता रूप कार्य्य भेद से बुद्धि, अहङ्कार एवं चित्त नाम से वह ख्यात होता है, यह मन ही विषय में बद्ध होने का एकमात्र कारण है, श्रुति कहती है,—मनुष्यों का मन ही बंध, एवं मोक्ष का हेतु है, विषय के सङ्कल्प से युक्तमन अशुद्ध होता है, कामना रहित मन शुद्ध होता है, इस प्रकार स्मृति के लिए मन ही कारण है॥ राजस अहङ्कार से उत्पन्न द्रव्य रूप

इदं मनो विषयसंसर्गे बंधहेतुः । मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । अशुद्धं काम संकल्पं शुद्धं कामविवर्जितमिति श्रुतेः । तदित्थं स्मृत्यादिकरणमिन्द्रियं मनः सिद्धं ॥४॥

राजसाहङ्कारोपादानकं द्रव्यं बहिरिन्द्रियं । तच्चद्विविधं ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियभेदात् । तत्राद्यं पञ्चविधं श्रोत्रत्वक्चक्षुर-सनघ्राणभेदात् । तत्र शब्दमात्रग्राहकमिन्द्रियं श्रोत्रं मनुष्या-दीनां कर्णशस्कुल्यवच्छिन्नप्रदेशवृत्तिः, सर्पाणां तु चक्षुर्वृत्तिः । स्पर्शमात्रग्राहकमिन्द्रियंत्वक् सर्वशरीर वृत्तिः, नखकेशादौ प्राणमात्रतारतम्यात् स्पर्शानुपलब्धिः । रूपमात्रग्राहकमिन्द्रियं चक्षुः कृष्णताराग्रवृत्तिः । रसमात्रग्राहकमिन्द्रियं रसनं जिह्वाग्रवृत्तिः । गंधमात्रग्राहकमिन्द्रियं घ्राणं नासाग्रवृत्तिः ।५। श्रोत्रादीनां पञ्चानामाकाशादीनि पञ्चक्रमेणाप्यायकानि भवन्तीति । भौतिकत्वमेषामुपचर्यते । एवं मनः प्राणवाचांच

वहिरिन्द्रिय समूह हैं, वह ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय भेद से द्विविध है, ज्ञानेन्द्रिय,—श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसन एव घ्राण भेद से पञ्चविध हैं, शब्द मात्र ग्रहण करने वाली इन्द्रिय श्रोत्र है, वह मनुष्य के कान के मध्य में रहती है, सर्प के नेत्रों में रहती है । स्पर्श मात्र ग्रहण करने वाली इन्द्रिय 'त्वक्' है, वह सर्वाङ्ग में रहती है, नख केश आदि में प्राणों के तारतम्य से स्पर्श की उपलब्धि होती है, रूपमात्र ग्रहण करने वाली इन्द्रिय नेत्र है, जो नेत्र में कृष्णतारा में पुतली के बीच रहती है । रस मात्र ग्राहक रसनेन्द्रिय है, वह जिह्वा के अग्रभाग में रहती है, गन्धमात्र को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय घ्राण है, वह नासिका के अग्रभाग में रहती हैं ॥५॥

श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय पञ्च के आश्रय पञ्चमहाभूत क्रमशः होते

क्रमात् पृथिव्यप्तेजोभिराप्यायनात् तत्तन्मयत्वं । श्रुतिश्च—अन्नमयं हि सौम्य मनः आपोमयः प्राण तेजोमयी वागिति ।६

अन्त्यमपि पञ्चविधं वाक्पाणिपाद पायूपस्थ भेदात् । तत्र-वर्णोच्चारणहेतुरिन्द्रियंवाक् हृत्कण्ठादिवृत्तिः । यदुक्तं—

'अष्टौस्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलञ्चदन्ताश्चनासिकोष्ठौ च तालुचेति' ॥

वेदभाष्ये । गवादिष्वष्टाभावात् तदभावः । शिल्पादिहेतु-रिन्द्रियं पाणिः, मनुष्यादीनामङ्गुल्यादि वृत्तिः,हस्त्यादिनां-तु नासिकाग्रादिवृत्तिः । संचारहेतुरिन्द्रियंपादः, मनुष्यादि-वृत्तिः उरगविहङ्गादीनामुरः पक्षादिवृत्तिः । मलादित्याग-हेतुरिन्द्रियं पायुस्तदवयववृत्तिः । आनन्दविशेषहेतुरिन्द्रिय-

---

हैं, इसी से इन सबको भौतिक कहते हैं । इस प्रकार मनः, प्राण, वाणी भी क्रमशः पृथिवी, अप एवं तेज से वृद्धि प्राप्त होते हैं । इस से उनको तन्मय कहा गया है । जिस प्रकार श्रुति कहती है,—" हे सौम्य ! मन, अन्नमय, प्राण आपोमय एवं वाणी तेजोमयी हैं ॥६॥

वाक्, पाणि, पाद, वायु, एवं उपस्थ नाम से कर्मेन्द्रिय भी पाँच प्रकार होती हैं, वर्णोच्चारण के हेतु रूप इन्द्रिय वाक् इन्द्रिय हैं, जो हृदय, कण्ठ आदि में रहती है । वेद भाष्य में कहा है, वर्णों के आठस्थान हैं,—उर, कण्ठ, शिर, जिह्वा, मूल, दन्त, नासिका ओष्ठ और तालु है । गो आदि के शरीर में उक्त आठ स्थानों का अभाव हेतु इस में वागेन्द्रियका अभाव है । शिल्प आदि आदि का कारण रूप जो इन्द्रिय है, वह पाणि है, वह मनुष्य के हाथों की अङ्गुलियों में एवं हाथी आदि के सूँड़ादि के अग्रभाग में रहती है । सञ्चरण का हेतु पाद इन्द्रिय है, जो मनुष्य आदि के पैरों में एवं सर्प पक्षी आदि की छाती और पंखों में रहती है । मल आदि त्याग का हेतु

मुपस्थः, स च मेहनादिवृत्तिरिति ॥७॥

सात्विकाहंकारादिन्द्रियाधिष्ठात्र्यश्चन्द्रादयश्चतुर्दश देवता भवन्ति। तेषु चन्द्र चतुर्मुखशंकराच्युतैः क्रमात् प्रवर्तितानि मनो बुद्धयहंकारचित्तानि संकल्पाध्यवसायाभिमानचिन्ता प्रवर्तयन्ति। दिग्वातार्कवरुणाश्विभिः क्रमात् प्रवर्तितानि श्रोत्रत्वक्चक्षुरसनघ्राणानि शब्दस्पर्श रूपरसगंधान् प्रकाशयन्ति। अग्नीन्द्रोपेन्द्र यमप्रजापतिभिः क्रमात् प्रवर्त्तिता वाक्पाणिपादपायूपस्थावचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाननु-भावयन्तीति ॥८॥

तामसाहंकारात्तु तन्मात्राण्यन्तरीकृत्य पञ्चभूतान्युत्पद्यन्ते। तामसाहंकारभूतवर्गयोरान्तरालिकः परिणामस्तन्मात्र शब्द

पायु इन्द्रिय है, जो उसी अङ्ग में रहती है। आनन्द विशेष का हेतु उपस्थ इन्द्रिय है, जो मेहन में (लिङ्ग में) रहती है ॥७॥

सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठाता चन्द्रमा आदि चतुर्दश देवता होते हैं, उनमें चन्द्र, चतुर्म्मुख, शङ्कर, अच्युत के द्वारा क्रमशः प्रवर्त्तित मन, बुद्धि, अहङ्कार चित्त होते हैं, उन से क्रमशः सङ्कल्प, अध्यवसाय, अभिमान, चिन्ता का प्रकाश होता है, दिक्, वायु, सूर्य्य, वरुण, एवं अश्विनी कुमारों के द्वारा कमसे प्रवर्त्तित जो श्रोत्र, त्वक् चक्षु, रसन, एवं घ्राण ज्ञानेन्द्रिय है, उनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकाशित होते हैं। अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम, एवं प्रजापति द्वारा क्रमश प्रवर्त्तित वाक् पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, जो कर्मेन्द्रिय हैं, उनसे बोलना, ग्रहण करना, चलना, मलादित्याग करना, एवं आनन्द का अनुभव करना होता ॥८॥

तामस अहङ्कार से तन्मात्राओं को मध्य में स्थापन कर पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं, तामस अहङ्कार और पञ्चभूत, इन दोनों के

वाच्योऽविशेषशब्देन च कथ्यते। यथा दुग्धदध्नोरांतरालिकः कललपरिणाम स्तथैव द्रष्टव्यः। भूतवर्गस्तु विशेषशब्देनोक्तः। सूक्ष्मावस्था तन्मात्राणि स्थूलावस्था तु भूतानीति ॥९॥

एतां भूतोत्पत्तिप्रक्रियां बहुधा निरूपयन्ति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुरित्यादि श्रुत्यर्थच्छायामवलम्व्य भूताद्भूतोत्पत्तिरेके। तदाहुः किन्तदासीदित्यादिसुबाल श्रुतिं; तस्मादहंकारात् पंचतन्मात्राणि तेभ्यो भूतानीति गोपालश्रुतिं च दृष्ट्वा केचिदेवं वदन्ति। भूतादेरहंकारात् पञ्चापि तन्मात्राण्युत्पद्यन्ते तेभ्यः क्रमात् पञ्चभूतानीति। तां ताश्च श्रुतिं निभाल्य परन्त्वेवं वर्णयन्ति।

मध्य में होने वाले परिणाम को तन्मात्रा कहते हैं, जिस को दोनों का विकार (कलल) कहा जाता है, वैसे ही इसे भी जानना होगा। भूत वर्ग विशेष शब्द से कहे जाते हैं। सूक्ष्म अवस्था ही तन्मात्रा है, एवं स्थूल अवस्था भूत है ॥९॥

इन भूतों की उत्पत्ति के विषय में वर्णन अनेक प्रकार है, उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, इत्यादि श्रुत्यर्थ का अवलम्वन कर कोई तो भूतों से भूतों की उत्पत्ति कहते हैं, कोई "यह कहो वह कैसा था" इत्यादि सुबाल श्रुति, एक "उस अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा और उन से पञ्चमहाभूतहुए" इस गोपाल श्रुति को देखकर ऐसा कहते हैं, तामस अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा होती हैं। और उनसे क्रमशः पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं, और दूसरे कोई इन श्रुतियों को देखकर इस प्रकार वर्णन करते हैं, तामस अहङ्कार से शब्द तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है, उस से आकाश होता है, आकाश से शब्द स्पर्श तन्मात्रा होती है उस से वायु उत्पन्न होता है। वायु से शब्द, स्पर्श, रूप तन्मात्रा होती है, उनसे तेज उत्पन्न होता है, तेज से

भूतादेः शब्दतन्मात्रं तस्मादाकाशः, आकाशात् शब्दस्पर्श-तन्मात्रं तस्माद्वायुः, वायोः शब्दस्पर्शरूप तन्मात्रं, तस्मात्तेजः तेजसः शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रं, तस्मादापः, अद्भ्यो शब्द-स्पर्शरूपरसगंधतन्मात्रं, ततः पृथिवीति* ॥१०॥

एषां पञ्चानां लक्षणानि । स्पर्शवत्वेसति विशिष्टस्पर्श-शब्दाधारात्वमाकाशत्वं । विशिष्टस्पर्शवत्वेसति रूपशून्यत्वं, अनुष्णाशीतस्पर्शवत्वेसति गंधशून्यत्वं वायुत्वं । उष्णस्पर्शवत्वं भास्वररूपवत्वं वा तेजस्त्वं । शीतस्पर्शवत्त्वे निर्गन्धत्वेसति विशिष्टरसत्वं आप्त्वं । विशिष्ट गंधवत्वं पृथिवीत्वमिति ।११

भूतानां पञ्चीकृतत्वात् शब्दादीनां सर्वत्रोपलम्भो नाम नानुपपन्नः । पञ्चीकरणं त्वित्थं बोध्यम् । सर्वेश्वरो हरिः

शब्द, स्पर्श रूप, रस, तन्मात्रा होती हैं, उन से जल उत्पन्न होता है। जलसे शब्द स्पर्श, रूप रस गन्ध तन्मात्रा होती हैं, उस से पृथिवी उत्पन्न होती है। केचिदत्र "भूतादेः" शब्द तन्मात्रं तस्मादाकाशः, आकाशात् स्पर्श तन्मात्रं, तस्माद्वायु, वायो रूपतन्मात्रं, तस्मात्तेजः, तेजसो रसतन्मात्रं तस्मादापः, अद्भ्योगन्धतन्मात्रं ततः पृथिवीति पठन्ति ॥१०॥

इन पञ्चभूतों के लक्षण समूह इस प्रकार हैं—स्पर्शयुक्त होकर एक विशेष स्पर्श एवं शब्द का आधार आकाश है, विशेष स्पर्श युक्त होकर रूप शून्य होना, एवं अनुष्णाशीत स्पर्श युक्त होकर गन्ध रहित होना वायु है, उष्ण स्पर्श युक्त होकर, अथवा प्रकाश पदार्थ ही तेज है, शीत स्पर्श युक्त गन्ध रहित होकर जो विशेष रस युक्त है वह जल है, और विशेष गन्धयुक्त होना ही पृथिवी है ॥११॥

पञ्चीकृत पञ्चभूत होने से शब्द आदि की प्राप्ति सर्वत्र होती रहती है, इस [illegible] नहीं [illegible] होता। [illegible]

पञ्चापि भूतानि सृष्ट्वा तानि प्रत्येकं द्विधा समं विभज्य तयोः पञ्चकयोरेकं प्रत्येकं चातुर्विध्येन समं विभज्य तेषां चतुर्णां भागान् स्व स्व स्थूलभागत्यागेनान्यस्मिन् योजनमिति।

यदुक्तं— "विभज्य द्विधापञ्चभूतानि देव

स्तदर्धानि पश्चाद्विभागानि कृत्वा ॥

तदन्येषुमुख्येषु तं तं नियुञ्जन्,

स पञ्चीकृतिं पश्यतिस्मेति ॥१२॥

एभ्यः पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यश्चतुर्दश लोकखचितान्याण्डानि सन्तीति। तेषु भूर्भुवः स्वः महर्जनस्तपः सत्याभिधाः सप्तलोकाः उपर्य्युपरि सन्ति। अतलवितल सुतलरसातलतलातल महातलपातालाख्याः सप्तत्वबोधः सन्तीति। तेभ्य एव जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जानिचतुर्विधानि शरीराणि ब्रह्माण्डान्तर्वर्तिनां जीवानामुत्पद्यन्ते। तेषु मनुष्यपश्वादीनि

प्रक्रिया इस प्रकार है;—सर्वेश्वर हरि—पञ्चभूतों की सृष्टि करके उन में से प्रत्येक के समान रूप दो दो भाग किए, पुनर्वार एक एक अर्द्ध भाग को चार भागों से विभक्त किए, अनन्तर अपने अपने स्थूल भाग को छोड़कर चार भागों को दूसरे में मिलाने से पञ्चीकृत हुआ कथित है—भगवान् पञ्चभूतों को दो भाग करके, पश्चात् उस के अर्द्ध भाग को विभक्त कर दूसरे तत्वों में मिलाकर देखने लगे ॥१२।

इन पञ्चीकृत भूतसमूह से चतुर्दशलोक युक्त ब्रह्माण्ड समूह उत्पन्न होते हैं, उनमें भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यः, ये क्रमशः ऊपर के लोक होते हैं। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल पातालनामके सात लोक नीचे के होते हैं। इन ब्रह्माण्डअन्तर्गत जीवों के जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज ये चार प्रकार के शरीर उन्हीं पञ्चीकृत महाभूतों से उत्पन्न होते हैं, उन

जरायुजानि, पक्षिपन्नगादीनि अण्डजानि, यूकमशकादीनि स्वेदजानि तरुगुल्मादीनि उद्भिज्जानीति ॥१३॥

इह दिक् पृथक् द्रव्यं न कल्प्यते। सूर्य्यपरिस्पन्दनादिना आकाशस्यैव प्राच्यादिरूपतासिद्धेः। दिक् सृष्टिस्त्वन्तरिक्षादि सृष्टिवत् सिध्यति ॥१४॥

प्राणो न पृथक् तत्वं। अवस्थान्तरापन्नस्य वायोरेवतत्वेन सिद्धेः। स पञ्चविधः प्राणापानसमानोदानव्यानभेदात् ॥ महदादीनि पृथिव्यन्तानि तत्वानि समष्टिस्तेष्वेकदेशोपादानेन क्रियमाणानि कार्य्याणि तु व्यष्टिरुच्यते ॥१५॥

अपरे तु अष्टौ प्रकृतयः षोड़शविकारा इति। श्रुत्यनुसारेण भूतादेः शब्दतन्मात्रं तस्मादाकाशः, स्पर्शतन्मात्रं, चोत्पद्यते, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः रूपतन्मात्रं च, रूप तन्मात्रात्तेजो, रस-

---

में मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं। पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं, जोंक मच्छर प्रभृति स्वेदजहैं,एवं वृक्ष, लता आदि वृश्चिक उद्भिज्जहैं।१३

यहाँपर दिक् को पृथक् द्रव्य मानना उचित् नहीं है, सूर्य की गति के अनुसार आकाश को ही पूर्व दिक् रूपसे कहा जाता है, शास्त्रों में दिक् की जो सृष्टि कही गई है, उसकी अन्तरिक्ष सृष्टि के समान जानना होगा ॥१४॥

प्राण भी पृथक् तत्त्व नहीं है, अवस्थान्तरापन्न वायु की ही अवस्था विशेष है। यह प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान भेद से पाँच प्रकार हैं। महत्तत्त्व से आरम्भ कर पृथिवी पर्य्यन्त तत्त्व समूह को समष्टि कहते हैं, उसमें एकदेश व्यापी जो कार्य्य होता है उसे व्यष्टि कहते हैं ॥१५॥

अपर व्यक्तिगण कहते हैं—श्रुति के अनुसार अष्ट प्रकार प्रकृति एवं सोलह विकार है। पञ्चभूतों की शब्द तन्मात्रा से

तन्मात्रञ्च, रसतन्मात्रादापोगन्धतन्मात्रञ्च, सहैवोत्पद्यते, गन्धतन्मात्राद्भूमिरितिवर्णयन्ति। एष्वाकाशादिषु पञ्चसु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। पञ्चगुणा यथोत्तरमेकैकाऽधिक्येन व्यज्यन्ते ॥ तत्राकाशे शब्द एकः, वायौशब्द स्पर्शौ द्वौ, तेजसि रूपान्तास्त्रयः, अप्सुरसान्ताश्चत्वारः, पृथिव्यांतु गन्धान्ताः पञ्चेति। इह तन्मात्राणां विषयाणां समाननामत्व-श्रवणादभेदो न शक्यः। पूर्व्वेषां भूतकारणत्वेन परेषां भूत-धर्मत्वेन भेदात्। तदित्थं प्रकृतिमहदहङ्कारैकादशेन्द्रिय-तन्मात्रपञ्चक पञ्चभूत भेदेन चतुर्विंशति तत्वानि वर्णितानि ।१६

एषु प्रकृत्यादित्रिकंभूतपञ्चकञ्च स्थूलदेहस्योपादानं। इन्द्रियानि तु भूषणार्पितरत्नानीव तदाक्रम्य तिष्ठन्ति। पञ्च-

---

आकाश, और स्पर्श तन्मात्रा होती है। उस से वायु एवं रूप तन्मात्रा उत्पन्न होती है। रूप तन्मात्रा से तेज और रस तन्मात्रा उत्पन्न होती है, रसतन्मात्रा से जल और गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न होती है, एवं गन्ध तन्मात्रा से पृथिवी उत्पन्न होती है, इन आकाशादि पञ्च महाभूतों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध ये पाँच गुण एकसे दूसरे में अधिक प्रकट होते हैं, जैसे कि आकाश में एक शब्द गुण होता है, वायु में शब्द स्पर्श दो हैं, तेज में शब्द स्पर्श रूप ये तीन हैं जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, चार है। पृथिवीमें-शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध, ये पाँच है। यहाँपर तन्मात्रा और विषय, यह सब के नाम सुनकर इन में अभेद बुद्धि नहीं करनी चाहिये। क्योंकि—प्रथम भूत समूह कारण हैं, अनन्तर भूत समूह धर्म हैं, अतः उभय में भेद सुस्पष्टहै। इस प्रकार प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार एकादश इन्द्रियां पञ्चतन्मात्रा एवं पञ्च महाभूत ये चतुर्विंशति तत्त्व वर्णन किए गए हैं ।।१६।।

मनीषिगण कहते हैं—इन में प्रकृति आदि और पञ्चमहाभूत

तन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि प्राणश्च सूक्ष्मदेहस्योपादानमिति व्याख्यातारः ॥१७॥

शरीरत्वं हि चेतनं प्रति नियमेनाधेयत्वं विधेयत्वं शेषत्वञ्च। भोगायतनं चेष्टाश्रयो वा शरीरमित्यादि लक्षणन्तु दुष्ट पत्नी शरीरादावतिव्याप्तेः। इह प्रकृत्यादेरुत्पद्यमानं महदादि न द्रव्यान्तरं। न हि मृत्पिण्डादुत्पद्यमानं घटादिकमर्थान्तरमुपलभ्यते किं त्ववस्थान्तरमेव तत्रोत्पद्यते, तावतैव नाम संख्या व्यवहारादिभेदसिद्धिः। नान्यथा सेनावनराश्यादिव्यवहारः सिध्येत्। तस्मादेकस्मिन् द्रव्ये कारणकार्ये द्वे अवस्थे ते च मिथो भिन्ने द्रव्यत्वभिन्ने भवतः। तन्तुपटात्मकं मिथो भिन्नं द्रव्यमिति तार्किका मन्यन्ते तन्न, अनुपलम्भादुन्मान वैगुण्यापत्तेश्च। भेदाभेदमिति सांख्याः प्राहुः। तन्न,

---

ये स्थूल देह के उपादान कारण है, और देह में इन्द्रियां रत्नादि अलङ्कार के समान हैं, पञ्चतन्मात्रा एकादश इन्द्रिय, और पञ्चप्राण, ये समूह देह के उपादान कारण हैं ॥१७॥

शरीरत्व ही चेतन के प्रति नियम से आधेय, विधेय एवं शेष है, भोग का आयतन, या चेष्टा का आश्रय शरीर का लक्षण करना ठीक नहीं है, क्योंकि,—पत्नी के शरीर आदि में इसकी अतिव्याप्ति हो जायेगी। यहां प्रकृति आदि से उत्पन्न महत्तत्त्व आदि पृथक् द्रव्य नहीं है, मृत्तिका से उत्पन्न घट आदि पृथक् वस्तु नहीं प्रतीति होती है, वह तो उसी के अवस्थान्तर मात्र है, इसी से नाम, संख्या आदि भेद व्यवहार होता है, अन्यथा सेना, धन सेनावनराशि आदि व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता। इस लिए एक ही द्रव्य में कारण और कार्य ये दो अवस्था होती है, तार्किक मत में कार्य कारण दोनों भिन्न है, यह ठीक नहीं है, कारण कि इस से अनुमान विरोध परिमाण में

विरोधात् । तस्मादभिन्नमेव कारणात्कार्य्यमिति ॥१८॥

इति वेदान्तस्यमन्तके प्रकृतितत्वनिर्णय श्चतुर्थः किरणः ।

——❋❋——

❀ पञ्चमः किरणः ❀

——❋❋❋——

अथ कालतत्वनिरूपणम् ॥ त्रैगुण्यो शून्यो जड़ो द्रव्यविशेषः कालः । स हि भूतभविष्यद्वर्त्तमानयुगपच्चिर क्षिप्रादिव्यवहारस्य सर्गप्रलययोश्च हेतुः क्षणादिपरार्द्धान्तश्चक्रवत्परिवर्त्तमानो वर्णयते। तत् सिद्धिस्तु ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः ।

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो श्चेष्टामाहु श्चेष्टते येन विश्वं ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तन्त्वेशामं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥

द्विगुण दोष हो जाता है, सांख्यवादिगण, कार्य कारण में भेदाभेद बताते हैं, सो ठीक नहीं है; क्योंकि दोनों में विरोध है । अतः कारण से कार्य अभिन्न है ॥१८॥

वेदान्त स्यमन्तक के प्रकृतितत्त्व निरूपण नामक
चतुर्थ किरण की विवृत्ति समाप्त ॥४॥

——❋❋——

❀ पञ्चमः किरणः ❀

अनन्तर कालतत्त्व का निरूपण करते हैं, सत्त्वरजस्तम गुण त्रय शुन्य जड़ द्रव्य विशेष को काल कहते हैं। यह भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान् युगपत्, चिर, क्षिप्र, आदि व्यवहार का एवं सृष्टि प्रलय का भी हेतु है, वह क्षण से लेकर परार्द्ध पर्य्यन्त चक्र के समान निरन्तर घूमता रहता है। शास्त्र में इसका वर्णन है। श्रुति में उक्त है,— वह ज्ञाता है, और काल का काल है, गुणी है, एवं सर्व विद्याओं से

कालचक्रं जगच्चक्रमित्यादि श्रुतिः स्मृतिश्च। नित्यो-विभुश्चैषः सदेव सोम्येदमग्र आसीदित्यादिषु सर्गात् प्रागपि तस्य सत्वावगमात्। सर्व्वत्र कार्य्योपलम्भाच्च यदुक्तं। न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासत इति ॥ सर्व नियामकोऽप्ययं परमात्मना नियम्यो भवति। ज्ञः काल इति श्रवणात् तस्य चेष्टात्वस्मरणाच्च। अत स्तन्नित्यविभूतौ नास्य प्रभावः। न यत्र कालो जगतां परः प्रभुः, कुतोऽनु देवा जगता च ईशिरे इत्यादि स्मृतेः ॥१॥

इति वेदान्तस्यमन्तकेकालतत्वनिर्णयः पञ्चमः किरणः।

युक्त हैः श्रीमद्भागवत में लिखित है, हे विश्वबन्धो ! यह जो काल है, जिस से यह विश्व नियन्त्रित होता है, जो निमेष से लेकर महावत्सर पर्य्यन्त है, वह काल आपकी ही चेष्टा है, ज्ञानीलोक ऐसा कहते हैं। हम उन्हीं मङ्गल भवन ईश्वर की शरण लेते हैं। "काल चक्रं, जगच्चक्रं" इत्यादि श्रुति में वर्णित है। यह काल नित्य एवं विभु है, श्रुति में लिखा है—हे सौम्य ! "इस विश्व सृष्टि से पहले एक सत् ही था," इस से सृष्टि के पूर्व भी काल की सत्ता मिलती है; सभी कार्यों में काल का अस्तित्व उपलब्ध होता है, जैसा कि लिखा है,—"जगत् में ऐसी कोई प्रतीति नहीं है, जिस मैं काल का मान न हो"। यह काल सबका नियामक है, एवं परमात्मा के द्वारा इसका नियमन होता है, जैसा कि पहले कहा गया है, वह ज्ञाता है, काल का काल है, काल उनकी चेष्टा है। अतः भगवान् की नित्य विभूति में इस काल का प्रभाव नहीं है। स्मृति में लिखा है—जगत् का श्रेष्ठ नियामक काल, वहाँपर नहीं है" ॥१॥

वेदान्त स्यमन्तक के कालतत्त्व निरुपण नामक

पञ्चम किरण की विवृत्ति समाप्त ॥५॥

❀ षष्ठः किरणः ❀

अथ कर्म्मं निरूप्यते । तच्च क्रियारूपं, कृतिसाध्यमपि कृतिमदनादिसिद्धम्, बीजाङ्कुरादिवदनादिसिद्धमुक्तम् । "न कर्म्माविभागादिति चेन्न, अनादित्वादिति" । तत् खल्व शुभंशुभञ्चेति द्विभेदं । वेदेन निषिद्धं नरकाद्यनिष्टसाधनं ब्राह्मणहननाद्यशुभं, तेन विहितं काम्यादि तु शुभं । तत्र स्वर्गादीष्टसाधनं ज्योतिष्टोमादि काम्यं । प्रकृते प्रत्यवायजनकं सन्ध्योपासनाऽग्निहोत्रादि नित्यं । पुत्रजन्माद्यनुबन्धि जातेष्ट्यादिनैमित्तिकं । दुरितक्षयकरचान्द्रायणादिप्रायश्चित्त मिति शुभं बहुविधं । एषु निषिद्धमिव काम्यञ्च मुमुक्षोर्हेयमेव मुक्तिप्रतिबन्धिफलत्वात् ! नित्यादिकन्तु चित्तशुद्धिकरत्वात् तेनानुष्ठेयमेव ॥१॥

अनन्तर कर्म का निरूपण करते हैं,—वह क्रियारूप है, एवं कृति साध्य होकर भी कृतिमदनादिसिद्ध बीजाङ्कुर के समान अनादिसिद्ध है। वेदान्तसूत्र में कथित है,—"न कर्माविगादितिचेन्न, अनादित्वात्, कर्मका विभाग नहीं है. ऐसा कहना ठीक नहीं है, कर्म अनादि है, कर्म शुभ अशुभ भेद से द्विविध है, वेद विहित काम्यादि कर्म शुभहै, वेद निषिद्ध,नरकादि अनिष्टों का साधन ब्राह्मण बध आदि अशुभ है। इन में स्वर्गादि इष्ट का साधन,—काम्य कर्म है, जिसके न करने पर प्रत्यवाय होता है, इस प्रकार सन्ध्योपासन अग्निहोत्रादि कर्म को नित्य कहते हैं। पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में जो जातेष्टयादि कर्म होते हैं, वे नैमित्तिक हैं, पापक्षय हेतु चान्द्रायण आदि जो प्रायश्चित्त रूप शुभकर्म है, वे अनेक प्रकार होते हैं। इन में निषिद्ध कर्म के समान काम्य कर्म भी मुमुक्ष के लिये हेय है, कारण कि-मुक्ति

किञ्च, ज्ञानोदयात् पूर्वं यत् सञ्चितं तत् शुभमशुभञ्च ज्ञानेन विनश्यति। ततः परं क्रियमाणं यत् न तेन विद्वान् विलिप्यते। तथा—यद्यथेषीकातुलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वं पाप्मानः प्रदूयन्त इति। यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवात्मविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति च छान्दोग्य श्रुतिः। अत्र सञ्चित क्रियमाणयोः पापयो विनाश विश्लेषा वुक्तौ। "उ भे उ हैवैष एते तरत्यमृतः साध्वसाधुनी" इति वृहदारण्यक श्रुति। अत्र तयोः पाप पुण्ययो स्तौ दर्शितौ उभे सञ्चितक्रियमाणे साध्वसाधुनी पुण्यपापे एष विद्वान् तरत्युल्लंघयति सञ्चितयोर्विनाशः। क्रियमाणयोस्त्वश्लेष इत्यर्थः ॥२॥

में ये सब बाधक हैं, और नित्य कर्म चित्त शुद्ध करने वाले होते हैं, अतः ये अनुष्ठान योग्य हैं ॥१॥

और भी आत्म विषयक ज्ञानोदय होने के पूर्व जो भी शुभ अशुभ कर्म सञ्चित है, वे सब ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं, इसके पश्चात् जो क्रियमाण कर्म है, उनसे ज्ञानि व्यक्ति लिप्त नहीं होते हैं। जिस प्रकार रुई अग्नि से दग्ध हो जाती है, उस प्रकार ज्ञानी के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार कमल के पत्ते में जल स्पर्श के बिना रहता है, उस प्रकार ज्ञानी व्यक्ति को पाप कर्म स्पर्श नहीं करता है, छान्दोग्योपनिषत् में लिखित है। इन श्रुतियों में सञ्चित एवं क्रियमाण—दोनों प्रकार के पापों का विनाश एवं विश्लेष कहा गया है। वृहदारण्यक श्रुति में उक्त है, वह ज्ञानी पुरुष साधु असाधु दोनों प्रकार कर्म को तर जाता है। इस श्रुति में सञ्चित, क्रियमाण, इन दोनों प्रकार के पाप पुण्यों को विनाश कहा गया है, अर्थात् सञ्चित का विनाश एवं क्रियमाण का विश्लेष कहागया है ॥२॥

इत्थं ज्ञानेनैव विनिवृत्तकर्ममलस्तेनैव हरिपदं प्राप्याक्षय-सुखभाक् तत्रैव निवसति ततः पुन र्न निवर्त्तते । "ब्रह्म विदाप्नोति परं" "तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्य पन्था विद्यते अयनाय" "सोऽश्नुते सर्वान् कामान्" "न स-पुनरावर्त्तते" इति श्रवणात् ॥३॥

तच्च ज्ञानं द्विविधं-परोक्षमपरोक्षञ्च । परोक्षं शब्दं, अपरोक्षन्तु ह्लादिनी सारसमवेतसम्विद्रूपम् । तच्च भक्तिशब्द व्यपदेश्यं दृष्टं । विज्ञानघनानन्दघन सच्चिदानन्दैकरसे भक्ति-योगे स तिष्ठतीति गोपालोपनिषदि । तत्र पूर्वं परम्परया परन्तु साक्षाद्ब्रह्मप्रापकं बोध्यं । केचित्तु महत्तमप्रसङ्गलब्धेन शुद्धभक्तियोगरूपेण श्रवणकीर्त्तनादिकर्मणैव चित्तशुद्धिं हरि

इस प्रकार ज्ञान से ही कर्म मल विनष्ट होता है, उसी से हरि पद की प्राप्ति होती है, और अक्षय सुख का अधिकारी बनकर जीव वहीं निवास करता है। वहाँ से पुनर्वार आगमन नहीं होता है। जिस प्रकार श्रुति में वर्णित है,—ब्रह्मज्ञ व्यक्ति ही ब्रह्म पद को प्राप्त करता है, उसको जानकर ही मृत्यु से पार होता है, इस के अतिरिक्त परम पद को प्राप्त होने का अपर कोई मार्ग नहीं है, वह पुनरावर्त्तन नहीं करता है ॥३॥

उक्त ज्ञान द्विविध है,—परोक्ष एवं अपरोक्ष, शब्द द्वारा परोक्ष ज्ञान होता है, और अपरोक्ष ज्ञान ह्लादिनी शक्ति के सार युक्त सम्वित् रूप है, शास्त्र में जो भक्ति शब्द से उक्त है। गोपालो-पनिषद् में लिखित है। विज्ञानघनानन्द घन, सच्चिदानन्द के रस भक्ति योग में स्थित है, इस में प्रथम परोक्ष ज्ञान परम्परा रूप से दूसरा अपरोक्ष ज्ञान साक्षात् रूप से ब्रह्म प्राप्ति का कारण है, कुछ व्यक्ति महत् पुरुषों के सङ्ग से प्राप्त शुद्ध भक्ति योग रूप श्रवण

पदंच लभन्ते इति दृष्टम् ।

"पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां,
कथामृतं श्रवण पुटेषु संभृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं,
व्रजन्ति तच्चरण सरोरुहान्तिकमित्यादिषु ।४

तदित्थं तत्वपञ्चकं विस्तृतं, श्रीवैष्णवे चोक्तमेतत् ।
विष्णोः स्वरूपात् परतो हि तेऽन्ये, रूपे प्रधानं पुरुषञ्च विप्र !
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते, रूपेण यत्तत् द्विजकालसंज्ञं ॥
जनैश्च कर्मस्तिमितात्मनिश्चयै रित्यादिना ।
तदेवमेतत् पञ्चकविवेकी वर्णितसाधनसम्पत्तिमान् विशुद्धः,
श्रीहरिपदमुपलभ्य तत्रैव सर्वदा दिव्यति इति ॥५॥

कीर्त्तनादि कर्म के द्वारा ही चित्तशुद्धि एवं श्रीहरि के चरणों की प्राप्ति मानते हैं । श्रीमद्भागवत में लिखित है, जो व्यक्ति अपने कर्ण पुटों से साधु पुरुषों की आत्मा श्रीभगवान् की कथा रूपी अमृत का पान करता है, उनके विषयों से दूषित अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, और वह श्रीभगवच्चरणार विन्दों के समीप पहूँच जाता है ॥४॥

श्रीविष्णु पुराण में तत्त्व पञ्चक का विवरण लिखित है, "हे विप्र ! प्रधान पुरुष, प्रकृति जीव, यह दोनों निरुपाधि विष्णु रूप से भिन्न हैं„ हे विप्र ! जिस रूप के द्वारा सृष्टि के समय वे दोनों संयुक्त होते हैं, प्रलय के समय वियुक्त भी होते हैं, वह श्रीविष्णु का काल नामक रूप है । जिनका आत्म निर्णय कर्म के द्वारा स्तिमित हो गया है'' इत्यादि" । इस ग्रन्थ में वर्णित तत्त्व पञ्चक के विवेकी व्यक्ति, उक्त साधन सम्पत्ति युक्त होनेपर मुक्त होकर श्रीहरिपद को प्राप्त कर श्रीहरि के सान्निध्य में सदा रहता है ॥५॥

नित्यं निवसतु हृदये चैतन्यात्मा मुरारिर्नः ।
निरवद्यो निर्वृतिमान् गजपतिरनुकम्पया यस्य ॥६॥

राधादि दामोदर नाम बिभ्रता,
विप्रेण वेदान्तमयः स्यमन्तकः ।
श्रीराधिकायै विनवेदितो मया,
तस्याः प्रमोदं स तनोतु सर्वदा ॥७॥

इति वेदान्तस्यमन्तके कर्मतत्वनिर्णयः षष्ठः किरणः ।

※ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ※

श्रीचैतन्यात्मा मुरारि मेरे हृदय में सर्वदा विराजित हों, जिनकी अनुकम्पा से गजराज एवं गजपति श्रीप्रतापरुद्र अनवद्य आनन्द पूर्ण हुए थे । श्रीराधादामोदर नामक विप्रने वेदान्ततत्त्वपूर्ण स्यमन्तक नामकग्रन्थ रचना कर श्रीराधिका को समर्पण किया, इससे श्रीराधिका की प्रसन्नता नित्य होगी ।

इति वेदान्तस्यमन्तक में कर्मतत्त्व निर्णय नामक
षष्ठ किरण समाप्त हुआ ॥

हरिदासेति विप्रेण वृन्दारण्य निवासिना
ग्रन्थस्यमन्तकस्येयं विवृतीरचितामुदा ॥



"अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥
संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि ।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥"

स्वजातीय क्षुद्र होने पर भी उसका परस्पर सम्मिलन कार्य्यकर होता है । कारण तण्डुल तूष परित्यक्त होकर अङ्कुरोत्पादनक्षम नहीं होता है ।

"संहति" नीति शाश्वती है, किन्तु अशिक्षा, कुशिक्षा, दलीय शिक्षा ही एकता का विघटक है, इस से भोगेच्छा, सुखलिप्सा, अर्थाकाङ्क्षा, पदलोलुपता की वृद्धि होकर सामाजिक शान्ति विदूरित होती है ।

सुख-शान्ति समृद्ध समाज गठन के उद्देश्य से आविष्कृत महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन की स्वानुभूत वास्तव प्रचेष्टा ही असमोर्द्ध है ।

इसमें एक ही प्रमाण, एक साध्य, एक साधन, एक उपास्य एक आदर्श है । मानव मात्र ही इसमें अधिकारी है ।

वेद एवं वेदानुगत निखिल शास्त्रों का सार निर्णय एवं बुद्धि-शुद्धि का कारण निर्णय निबन्धन श्रीमद्भागवत का प्रणयन महर्षि वेदव्यास के द्वारा हुआ है ।

जिस में व्रज सीमन्तिनीगण ही आदर्शाग्रणी, परम पुरुषार्थ अनन्य ममता ही प्रयोजन, भक्ति ही परम साधन, परमानन्दकन्द सर्वाश्रय सुशील श्रीकृष्ण ही उपास्यतत्त्व, एवं श्रीमद्भागवत ही एकमात्र प्रमाण,—उद्घोषित है ।

श्रीवृन्दावनस्थ श्रीजीवगोस्वामिकृत "भागवत सन्दर्भ" (षट्सन्दर्भ) उक्त दुर्द्धर्ष श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का ही निरवद्य भाष्य है । तत्त्व, भगवत्, परमात्म, कृष्ण, भक्ति, प्रीति नामक सन्दर्भ के द्वारा महर्षि श्रीव्यासदेव के अभीप्सित तत्त्वों का सरस विश्लेषण इसमें है ।

१ । तत्त्व सन्दर्भ में—एक अद्वय तत्त्व 'सत्य' का ही प्रतिपादन, "ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्" रूप में उक्त तत्त्व की अभिव्यक्ति, दृष्टि तारतम्य से ही होती है, वस्तु में तारतम्य नहीं है । पुराणों का वेदत्व प्रतिपादन, श्रीमद्भागवत का सर्वप्रमाण चक्रवर्त्तित्व, जीव स्वरूप निरूपण, रसस्वरूप श्रीमद्भागवतस्थ अक्षरों का अहेयत्व प्रतिपादन ।

२। भगवत् सन्दर्भ में—आदर्श सशक्तिक परतत्त्व का प्रदर्शन, उपासक दृष्टि से परतत्त्व का आविर्भाव, बैकुण्ठ निरूपण, विशुद्ध सत्त्व निरूपण, स्वरूप शक्ति, अचिन्त्य शक्ति, अन्तरङ्गादि शक्ति वर्णन। माया शक्ति का निर्णय। श्रीविग्रह का पूर्णस्वरूपत्व, अवतार तारतम्य, सर्ववेदाभिधेयत्व, श्रुतिस्तुति सङ्गति, सर्वप्रकरण संग्रहादि।

३। परमात्म सन्दर्भ में—परमात्मा, भेद, गुणावतार तारतम्य, जीव, माया, जगत्, परिणाम स्थापन, विवर्त्त समाधान, जगत् के सहित परमात्मा की अनन्यता, जगत् की सत्यता, निर्गुण का समाधान, जगत् शिक्षा हेतु भक्त-भगवान् का जगत् में आगमन। षड़् विध लिङ्ग के द्वारा भगवान् में तात्पर्य्य निर्णय प्रभृति।

४। श्रीकृष्ण सन्दर्भ में—श्रीकृष्ण की स्वयं भगवत्ता, अंश बोधक वाक्यों का समाधान, पूर्णत्व प्रदर्शन। श्रीधरस्वामी की सम्मति, मतान्तर का निरसन। सर्वशास्त्र समन्वय, श्रीभगवन्नाम महिमादि।

५। भक्ति सन्दर्भ में—उत्तमा भक्ति की साधनता। निखिल प्रसङ्गों के द्वारा प्रतिपादन, वर्णाश्रमधर्म, ज्ञान साधन, कर्म समर्पण, जीवन्मुक्ति में भक्ति, सर्वफलप्रदायित्व, अधिकारि भेद, निष्काम धर्म, सत्प्रसङ्ग, भगवत् उन्मुखता में हेतु। महाभागवत प्रसङ्ग, परिचर्य्या वैष्णवों की परिचर्य्या, श्रवणादि नवधा भक्ति, गुरु वरण, अहंग्रहोपासना, भक्त लक्षण, वैधी भक्ति, शरणागति, श्रीगुरु सेवा, श्रीकृष्ण का भजन वैशिष्ट्य प्रभृति।

६। प्रीति सन्दर्भ में—श्रीभगवत्प्रीति का सर्व पुरुषार्थ निर्णय, मुक्ति, प्रभृति का विवेचन, सद्योमुक्ति क्रम, जीवन्मुक्ति, सालोक्यादि मुक्ति, भगवद्भक्त ही मुक्त, भगवत् प्रीति का स्वरूपलक्षण तटस्थ-लक्षण। प्रीति भेद, अभिमान भेद, ऐश्वर्य्य माधुर्य्य का तारतम्य, गोकुलवासियों का तारतम्य, श्रीराधा का श्रेष्ठत्व।

श्रीभगवत् प्रीति का रसत्व प्रतिपादन। अनुकार्यगत रस, लौकिक रस से विलक्षणता, सन्देह निरसन, विभावादि का प्रदर्शन, गुणादि का कथन, ऐश्वर्य्य माधुर्य्य, पञ्चविध रस का वर्णन, गौण रस, रसाभास, शान्तादि रस, उज्ज्वल रस, प्रतिपक्ष, आलम्बनादि, पूर्वरागादि विप्रलम्भ, सम्भोग, मान, प्रेमवैचित्र्य, प्रवास, सम्भोगभेद, श्रीराधा की महिमा प्रभृति।

भागवत सन्दर्भ के अध्ययन से मानवमन जीव मात्र के प्रति ममत्व स्थापन में सद्य उत्साही होता है।

"श्रीचैतन्यमतानुगा बहुविधैस्तत्त्वैः समुद्भासिता।
सद्भक्तिप्रतिपालनी सुवचसा प्रेमार्थसंस्थापिका॥
जीवातु र्हरिभक्तजीवनिचये चित्तश्रुतिप्रीतिदा।
श्रीजीव प्रतिभा जगद्विजयिनी सर्वैर्धिया धार्य्यताम्॥

हरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, कालीदह, वृन्दावन।

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता सद्ग्रन्थावली

क्रम. सद्ग्रन्थ	मूल्य
१-वेदान्तदर्शनम् भागवतभाष्योपेतम्	१५०.००
२-श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३-श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४-श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धतिः	२०.००
५-श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८-श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९-ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०-श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२-चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३-प्रेमसम्पुट	४०.००
१४-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
१५-ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६-श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७-श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८-श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९-श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०-धर्मसंग्रह	५०.००
२१-श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२-श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३-सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४-श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५-रासप्रबन्ध	३०.००
२६-दिनचन्द्रिका	२०.००
२७-श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८-स्वकीयात्वनिरासविचारः, परकीयात्वनिरूपणम्	१००.००
२९-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	३०.००
३०-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	११०.००
३१-श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२-श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३-श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४-भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५-प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६-वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७-तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८-भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९-परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०-कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१-भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२-प्रीतिसन्दर्भः	३००.००

सद्ग्रन्थावली अनुक्रमणिका

क्रम. सद्ग्रन्थ	मूल्य
४३-दश:श्लोकी भाष्यम्	
४४-भक्तिरसामृतशेष	६०.००
४५-श्रीचैतन्यभागवत	१००.००
४६-श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	२००.००
४७-श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८-श्रीगौरांगविरुदावली	१५०.००
४९-श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	४०.००
५०-सत्संगम्	१५०.००
५१-नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२-श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	५०.००
५३-श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	३०.००
५४-श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	१०.००
५५-श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	२५०.००
५६-५७-५८-श्रीहरिभक्तिविलासः	३०.००
५९-काव्यकौस्तुभः	६००.००
६०-श्रीचैतन्यचरितामृत	१००.००
६१-अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२-श्रीगौरांगलीलामृतम्	२५०.००
६३-शिक्षाष्टकम्	३०.००
६४-संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	१०.००
६५-प्रयुक्ताख्यात मंजरी	८०.००
६६-छन्दो कौस्तुभ	२०.००
६७-हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः	५०.००
६८-साहित्य-कौमुदी	५०.००
	१५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१-श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	
२-दुर्लभसार	१०.००
३-साधकोल्लास	१०.००
४-भक्तिचन्द्रिका	५०.००
५-श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	४०.००
६-श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	२०.००
७-श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८-भक्तिसर्वस्व	३०.००
९-मनःशिक्षा	३०.००
१०-पदावली	३०.००
११-साधनामृतचन्द्रिका	३०.००
१२-भक्तिसंगीतलहरी	४०.००
	२०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

१-पद्यावली **(Padyavali)**	
	२००.००

गोशाला

आश्रम के अग्रभाग में एक बृहद् गोशाला है, जिसमें गोवंश की संख्या लगभग 201 है। यहाँ पर गाय की सेवा गाय के अनुकूल रूप में ही की जाती है न कि व्यवसाय की दृष्टि से। गाय श्रीकृष्णजी की भी पूज्य हैं जो कि उनकी भौमलीला से विदित है, उनको आदर्श मानकर ही यहाँ पर गाय की सेव्यरूप में सेवा की जाती है। गो-सेवा के लिए 'श्रीहरिदास शास्त्री गऊ संस्थान' की स्थापना की गयी है तथा तेहरा ग्राम श्रीवृन्दावन के निकट 11 एकड़ भूमि भी खरीदी गयी है, वहाँ पर एक और नवीन बृहद् गोशाला है। वृद्धावस्था में भी महाराजश्री स्वयं गो-सेवा करते हैं। इस आश्रम का वातावरण प्राचीय समय के ऋषिकुलों जैसा है। आश्रम में श्री श्री गौरगदाधर ग्रन्थागारम् नामक एक विराट ग्रन्थागार भी है जिसमें प्रचुर प्राचीन मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आश्रम की एक 'प्रेस' भी है जिसका नाम 'श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस' है। इस प्रेस से अभी तक लगभग 82 सद्ग्रन्थों का संस्कृत, हिन्दी, बँगला एवं अंग्रेजी भाषा में प्रकाशन हो चुका है।

मुद्रक :

श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस

(श्रीहरिदास निवास)

प्राचीन कालीदह, वृन्दावन (मथुरा)

फोन : 0565-3202322, 3202325